किशोर ग्रन्थमाला ६३

मुद्रा रहस्य

(मुद्रा प्रदर्शन के चित्र सहित)

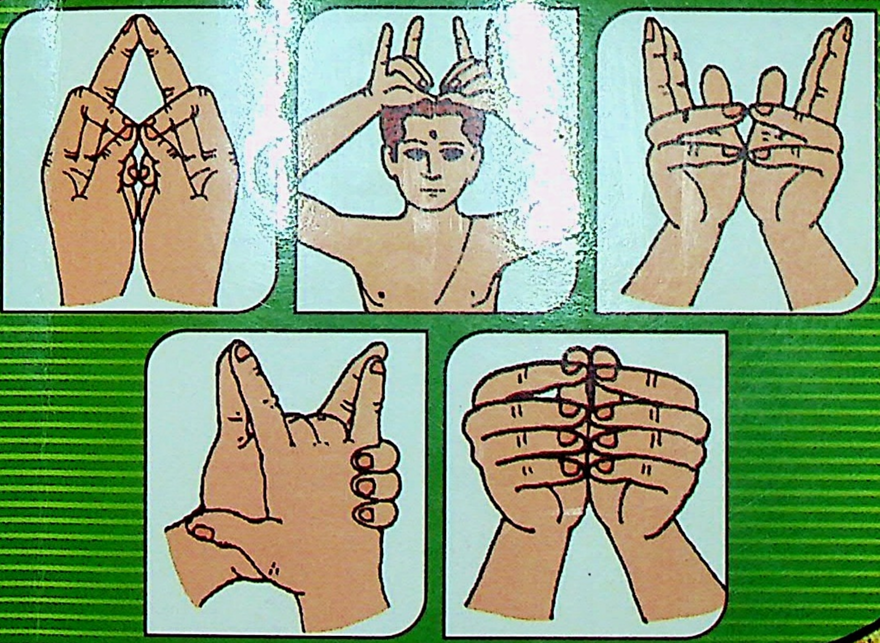

सम्पादक एवं व्याख्याकार

पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

किशोर ग्रन्थमाला
६३

मुद्रा रहस्य

(मुद्रा प्रदर्शन के चित्र सहित)

सम्पादक एवं व्याख्याकार

पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : तृतीय, वि०सं० २०७०, सन् २०१४
मूल्य : रू० ७०.००

ISBN : 978-81-218-0132-X

© चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

पोस्ट बॉक्स नं० ११९८, के. ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
वाराणसी - २२१००१ (भारत)
फोन : २३३५०२०

अपरं च प्राप्तिस्थानम्

चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस

के. ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पोस्ट बॉक्स नं० १००८, वाराणसी-२२१००१ (भारत)
फोन : (आफिस) २३३३४५८, आवास : २३३५०२०, २३३४०३२
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
www.chowkhambasanskritseries.com

KISHOR GRANTHAMALA
63

MUDRĀ RAHASYA

With

Hindi Commentary

By

Pt. Harihar Prasad Tripathi

CHOWKHAMBA KRISHNADAS ACADEMY
VARANASI

Publisher : Chowkhamba Krishnadas Academy, Varanasi,
Printer : Chowkhamba Press, Varanasi.

© Chowkhamba Krishnadas Academy

P.Box. No. 1118, K.37/118, Gopal Mandir Lane
Near Golghar (Maidagin)
Varanasi-221001 (India)
Phone : 2335020

Also can be had from :

Chowkhamba Sanskrit Series Office

K.37/99, Gopal Mandir Lane
(North Gate to the Gopal Mandir)
Near Golghar (Maidagin)
P. Box. No. 1008, Varanasi-221001, (India)
Phone : Office : 2333458, **Res.** : 2334032 & 2335020
e-mail : cssoffice@satyam.net.in
www.chowkhambasanskritseries.com

प्राक्कथन

'मुद्रा' शब्द का अर्थ प्रमुखतया छाप, मुहर, अंकन आदि से होता है। समाचार-पत्र, पुस्तकें आदि मुद्रित की जाती हैं और जिन स्थानों में ये कार्य होते हैं उन्हें मुद्रणालय के नाम से जाना जाता है। वस्त्रों पर भी विभिन्न प्रकार के बेल-बूटों की छपाई की जाती है। शैव अथवा वैष्णव सम्प्रदाय के भक्तगण अपने शरीरांगों (मस्तक, वक्ष:स्थल एवं भुजाओं) पर चंदन के द्वारा भगवन्नामों की छाप का तिलकांकन करते हैं।

इसके अतिरिक्त मुद्रा का अर्थ सिक्का से भी होता है। प्राचीन काल के सिक्कों में तत्कालीन राजाओं के चित्र भी अंकित हुआ करते थे। आधुनिक सिक्कों में भी भारत सरकार के चिह्न अंकित रहते हैं। पूर्वकाल में किसी व्यक्ति या घटना की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिए शिलालेख उत्कीर्ण कराये जाते थे। इन दिनों अर्थशास्त्र में भी मौद्रिक प्रणाली अपनायी जाती हैं।

मुद्रा के द्वारा मन की भाव-भंगिमा भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। महाराज जनक की रंगभूमि में धनुष-भंग के पश्चात् महर्षि परशुराम का पदार्पण अत्यन्त क्रोध की मुद्रा में होता है जिसे कविवर तुलसीदासजी ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—

तेहि अवसर सुनि शिवधनु भंगा,
आये रघुकुल कमल-पतंगा।
शीश जटा शशि वदन सुहावा,
रिस वश कछुक अरुण होई आवा।।
भृकुटी कुटिल नयन रिस राते,
सहजहिं चितवत मनहुँ रिसाते।
अति रिस बोले वचन कठोरा,
कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा।।
वेगि दिखाव मूढ़ नतु आजू,
उलटौं महि जहँ लगि तव राजू।।

इसी प्रकार अभिनय या नृत्य के क्षेत्र में भी अंग-संचालन के द्वारा विविध मुद्राएँ प्रदर्शित की जाती हैं। देवोपासना में भी आवाहन आदि की मुद्राएँ प्रदर्शित की जाती हैं क्योंकि मुद्रा के अभाव में देवगण भी की गयी पूजा को पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं करते। फलस्वरूप आराधक की पूजा निष्फल हो जाती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'मुद्रा रहस्य' में देवपूजन की मुद्राओं का उल्लेख किया गया है । इसके साथ ही योगसाधन की मुद्राएँ भी उल्लिखित हैं । योगाभ्यासी साधक मुद्राओं के आश्रयण से जराव्याधि से रहित हो जाता है। इन मुद्राओं के द्वारा अनेक प्रकार के दु:साध्य रोग भी निर्मूल हो जाया करते हैं ।

इस पुस्तक के परिशिष्ट भाग में पूजनोपयोगी कुछ नियम भी दे दिये गये हैं, जैसे– देवपूजन की उपयुक्त तिथियाँ, दश महाविद्या के जपमंत्र, जप के विधान, जप का माहात्म्य आदि अनेक विषय दिये गये हैं जो उपासक के लिए परमावश्यक एवं अत्यन्त उपयोगी है ।

पुस्तक के लेखन-कार्य में पाराशर संहिता, शैवरत्नाकर, शारदातिलक, वाराही तंत्र एवं मंत्रमहार्णव आदि ग्रन्थों से भी सहायता ली गयी है ।

इस पुस्तक के प्रकाशक श्री टोडरदासजी गुप्त, चौखम्बा, वाराणसी ने पूजनोपयोगी ऐसी अनुपम पुस्तक का प्रकाशन कर अध्यात्म-जगत में प्रशंसनीय योगदान दिया है । एतदर्थ वे साधुवाद के पात्र हैं ।

हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

सी० के० ५८/३५, रेशमकटरा,

वाराणसी – २२१००१

अनेक ग्रन्थों के लेखक, सम्पादक एवं व्याख्याकार

पं० हरिहरप्रसाद त्रिपाठी

अनुक्रमणिका

देवताओं के आवाहन-स्थापन हेतु प्रयुक्त होने वाली नव मुद्राएं
आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापिनी, सम्बोधिनी, सम्मुखीकरण, सकलीकरण, अवगुण्ठनी, धेनु तथा परमीकरण । (पृ० १-२)

षडंगन्यास की छह मुद्राएं
हृदयमुद्रा, शिरोमुद्रा, शिखामुद्रा, कवचमुद्रा, नेत्रमुद्रा तथा अस्त्रमुद्रा । (पृ० २)

पंचोपचार पूजन की पंच मुद्राएं
गन्ध मुद्रा, पुष्प मुद्रा, धूप मुद्रा, दीपमुद्रा तथा नैवेद्य मुद्रा । (पृ० २-३)

पञ्चप्राण की पाँच मुद्राएँ
प्राणमुद्रा, अपानमुद्रा, व्यानमुद्रा, उदान मुद्रा एवं समान मुद्रा । (पृ० ३)

षोडशोपचार पूजन में प्रयुक्त होनेवाली सोलह मुद्राएँ
आवाहनी मुद्रा, पद्म मुद्रा, स्वागत मुद्रा, पाद्य मुद्रा, अर्घ्यमुद्रा, आचमनी मुद्रा, स्नान मुद्रा, वस्त्र मुद्रा, आभूषण मुद्रा, यज्ञोपवीत मुद्रा, गन्धमुद्रा, पुष्प मुद्रा, धूप मुद्रा, दीपमुद्रा, नैवेद्य मुद्रा एवं विसर्जन मुद्रा । (पृ० ३-५)

षोडशोपचार पूजन-माहात्म्य (पृ० ५-६)

विष्णुपूजन में प्रयुक्त होने वाली उन्नीस मुद्राएँ
शंख मुद्रा, चक्र मुद्रा, गदा मुद्रा, पद्म मुद्रा, वेणु मुद्रा, श्रीवत्स मुद्रा, कौस्तुभ मुद्रा, वनमाला मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, बिल्व मुद्रा, गरुड़ मुद्रा, नारसिंही मुद्रा, वाराह मुद्रा, हयग्रीव मुद्रा, धनुर्मुद्रा, बाण मुद्रा, परशु मुद्रा, काम मुद्रा एवं त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा । (पृ० ७-९)

शिवपूजन हेतु प्रयुक्त होने वाली दश मुद्राएँ
लिंग मुद्रा, योनिमुद्रा, त्रिशूल मुद्रा, अक्षमाला मुद्रा, वर मुद्रा, अभय मुद्रा, मृग मुद्रा, खट्वांग मुद्रा, कपालाख्य मुद्रा एवं डमरू मुद्रा । (पृ० ९-११)

गणेश-पूजन की सप्त मुद्राएँ
दन्त मुद्रा, पाश मुद्रा, अंकुश मुद्रा, विघ्न मुद्रा, मोदक मुद्रा, परशु मुद्रा एवं बीजपूर मुद्रा । (पृ० ११)

सरस्वती-पूजन की चार मुद्राएँ
वीणा मुद्रा, पुस्तक मुद्रा, व्याख्यान मुद्रा
एवं अक्षमाला मुद्रा । (पृ० ११-१२)
लक्ष्मी-पूजन हेतु प्रयोग की जाने वाली षडंग मुद्राएँ
हृदय मुद्रा, शिरोमुद्रा, कवच मुद्रा, नेत्रमुद्रा,
अस्त्र मुद्रा एवं उपांग मुद्रा । (पृ० १२-१३)
लक्ष्मी-पूजन में प्रदर्शित की जाने वाली मुद्राएँ
शक्तिमुद्रा एवं लक्ष्मी मुद्रा । (पृ० १३)
लक्ष्मी-बीजमन्त्र प्रयोग (पृ० १३-१४)
शक्तिपूजा में उपयोगी मुद्राएँ
(घट-स्थापन में)
मत्स्य, अस्त्र, कवच, धेनु, संरोधिनी, मुसल,
चक्र, महामुद्रा तथा योनिमुद्रा ।
(आयुध मुद्रा में)
खड्ग, गदा, बाण, धनुष, परिघ, शूल, हल, घंटा,
भुशुंडी, कुंडिका, दंड, शक्ति, चर्म, पाश, परशु,
पद्म, खट्वांग, कपाल, पुस्तक, ज्ञान, मुण्ड,
अक्षमाला, तर्जनी मुद्रा, वर मुद्रा, अभय मुद्रा,
प्रणाम मुद्रा, संहार एवं वज्र मुद्रा ।
तान्त्रिक हवन-मुद्रा
मयूरी, कुक्कुही, हंसी, मृगी एवं शूकरी मुद्रा । (पृ० १४-२१)
श्रीचक्र एवं त्रिपुरसुन्दरी पूजन में व्यवहृत होने वाली मुद्राएँ
त्रिखण्ड मुद्रा, सर्वसंक्षोभिणी, द्राविणी,सर्ववशंकरी,
उन्मादिनी, महांकुश, खेचरी, बीज तथा योनिमुद्रा । (पृ० २१-२५)
मातृकान्यास में व्यवहृत होने वाली मुद्राएँ
पूजन-काल की मुद्राएँ
ब्राह्मी वज्र, लोकपाल, वह्निप्राकार, गालिनी,
रिपुजिह्वाग्रहा, सप्तजिह्वा, तर्जनी, प्रार्थना,
अंजलि, विस्मय, कालकर्णी, एवं दुर्गा मुद्रा । (पृ० २५-२७)
बहिर्मातृकान्यास की मुद्राएँ (पृ० २७-३०)
जीव-न्यास के निमित्त छह मुद्राएँ (पृ० ३०-३१)

दश महाविद्या के अन्तर्गत तारापूजन की मुद्राएँ
योनिमुद्रा, भूतिनी, बीज, दैत्यधूमिनी एवं लेलिहाना मुद्रा ।
महाकाली-पूजन की मुद्राएँ
महायोनि, मुण्ड तथा भूतिनी मुद्रा । (पृ० ३१-३२)
मुद्रा-प्रयोग-विधान एवं कुछ अन्य मुद्राओं के लक्षण
नाराच, दारण, पंचमुख, अन्त्र, विष्वक्सेन, गणेश,
न्यास, सौभाग्यदंडिनी, चतुरस्र, रिपुजिह्वाग्रहा, क्रोध,
बलिदान, तर्पण, कुम्भ, लड्डूक, प्रणव, बीजपूर,
प्राणायाम, महांकुश, गोकर्ण, आचमन, खेचरी,
महामुद्रा, वनमाला एवं वाराहमुद्रा । (पृ० ३२-३६)
षट्कर्मानुसार तर्पण की विशिष्ट मुद्राएँ
सूची एवं क्षमापनी मुद्रा । (पृ० ३६-३७)
मन्त्रों के अधिष्ठाता देवता तथा हृदय
शिर आदि मुद्राओं के भेद (पृ० ३७-३९)
पुरश्चर्यार्णव के मतानुसार कुछ मुद्राओं के
प्रायोगिक लक्षण (पृ० ३९-४०)
योग-साधना सम्बन्धी कुछ मुद्राओं का विवेचन
महा मुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, उड्डीयान बंध
मूलबंध, जालधंर बंध, वज्रोली, विपरीतकरणी
शक्तिचालन, अश्विनी, षण्मुखी, काकी, योनि,
योग, शाम्भवी, चिन्मुद्रा एवं उन्मनी मुद्रा । (पृ० ४०-४६)
गायत्री-पूजन में व्यवहृत होने वाली मुद्राएँ
सम्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तीर्ण, द्विमुख
त्रिमुख, चतुर्मुख, पंचमुख, षण्मुख, अधोमुख,
व्यापक, अंजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित,
सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टि, मत्स्य, कूर्म,
वाराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्गर, पल्लव,
धेनु, ज्ञान, वैराग्य, योनि, शंख, पद्म, लिंग
तथा निर्याण मुद्रा । (पृ० ४६-५२)
ध्यान-धारणा हेतु पञ्चतत्त्व की मुद्राएँ
पृथिवी, आम्भसी, वैश्वानरी, वायु एवं आकाश मुद्रा । (पृ० ५३)

रोगोपचार हेतु कुछ अन्य मुद्राएँ
पृथिवी, जल, वायु, तेजसी, आकाश,
काकचंचु, ज्ञान, प्राण, चिन्मय, हृदय,
सर्वरोगहारी, लिंग, नेत्रनिमीलन, अश्विनी,
महाबंध एवं विपरीतकरणी मुद्रा । (पृ० ५३-५६)
पंचबलि मुद्राएँ
गणेश, बटुक, क्षेत्रपाल, योगिनी एवं सर्वभूत मुद्रा । (पृ० ५६)
हवन-विधि एवं मुद्राएँ
अवगुंठिनी, मृगी, हंसी तथा शूकरी मुद्रा । (पृ० ५७-५८)
परिशिष्ट
समस्त देवों के पूजनार्थ उपयुक्त तिथियाँ (पृ० ५९)
देवपूजन में ग्राह्य-अग्राह्य पुष्पों के प्रयोग (पृ० ६०)
आयुर्वेद मतानुसार पुष्पों की गुणवत्ता (पृ० ६१-६२)
पूजनोपयोगी कुछ अन्य नियम (पृ० ६२-६६)
दश महाविद्या के जापमन्त्र (पृ० ६६-६७)

देवताओं के आवाहन-स्थापन हेतु प्रयुक्त होने वाली नव मुद्राएँ

ये मुद्राएँ क्रमशः इस प्रकार से हैं— आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी सम्वोधिनी, सम्मुखीकरण, सकलीकरण, अवगुण्ठनी, धेनु तथा परमीकरण।

(१) आवाहनी मुद्रा– दोनों हाथों को मिलाकर उनके दोनों अँगूठों को अपनी-अपनी अनामिका उँगली के मूल भाग पर लगाना चाहिए और उसे ऊपर से नीचे की ओर दो बार ले जाना चाहिए। इस प्रकार से हम अपने-इष्टदेव की अवधारणा करते हैं।

(२) स्थापनी मुद्रा– आवाहन मुद्रा में हाथ की हथेली ऊपरी भाग में खुली थी। अब इस मुद्रा में उसे उलटा कर हथेली के पृष्ठभाग पर रख देना चाहिए। इसके द्वारा आराध्यदेव के स्थान ग्रहण करने का संकेत किया जाता है।

(३) सन्निधापनी मुद्रा– इसमें दोनों हाथों से मुट्ठी बाँधकर अँगूठे को ऊपर की ओर सीधा खड़ा कर दिया जाता है। यह मुद्रा अपने उपास्य को सन्निकट लाने के निमित्त प्रयुक्त होती है।

(४) सम्बोधिनी मुद्रा– दोनों मुट्ठियों के अंदर दोनों अँगूठों को रखकर उसे उलट देने से यह मुद्रा बनती है।

(५) सम्मुखीकरण मुद्रा– ऊपर कथित सम्बोधिनी मुद्रा की मुष्टिकाओं को ऊपर की ओर घुमाने से यह मुद्रा बनती है।

(६) सकलीकरण मुद्रा– देवताओं के षडंगन्यास के अन्तर्गत मंत्रोच्चार करते हुए हृदयादि न्यास कर्म करना ही सकलीकरण मुद्रा है।

(७) अवगुण्ठनी मुद्रा– इसमें दोनों हाथ की तर्जनी अँगुलियों को समायोजित कर नीचे की ओर घुमाना चाहिए अथवा बाएँ हाथ की मुट्ठी बंदकर तर्जनी को नीचे की ओर करके बराबर हिलाते - डुलाते रहने से यह मुद्रा बनती है।

(८) धेनु मुद्रा– इसे अमृतीकरण की मुद्रा भी कहा जाता है। इसके लिए पहले दाहिने हाथ की अँगुलियों को बाएँ हाथ की अँगुलियों के ऊपर रख छोड़ें, फिर दाहिनी तर्जनी को मध्यमा के बीच में रखें। अब बायीं अनामिका को दाहिनी कनिष्ठा उँगली से और दाहिने हाथ की अनामिका को बायीं कनिष्ठा से मिला लें। इस प्रकार सभी उँगलियों को समाविष्ट करने के

पश्चात् हाथ को पलट देने से धेनुमुद्रा हो जाती है । साधकगण इसी मुद्रा को प्रदर्शित कर अमृत बीजरूप 'वं' शब्द को बोलकर अमृतीकरण करते हैं ।

(९) परमीकरण मुद्रा– दोनों अँगूठों को परस्पर एक साथ जोड़कर दोनों हाथ की अँगुलियों को फैला देना चाहिए । इसे ही परमीकरण महामुद्रा के नाम से जाना जाता है । इसके लिए एक दूसरा नियम यह भी है कि दोनों हाथों को एक दूसरे के साथ संयुक्त कर उसे त्रिकोणाकार बना लेते हैं और उसे ही परमीकरण की मुद्रा मानते हैं ।

षडङ्गन्यास की छह मुद्राएँ

उपासक के लिए देवार्चन अथवा मंत्रजाप से पूर्व षडंगन्यास करना अतिआवश्यक कहा गया है । अंगन्यास करते समय जब हम 'हृदयाय नमः' कहें तो उस समय तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका उँगली के अगले पर्वों को मिलाकर हृदय का स्पर्श करना चाहिए । कुछेक लोगों के मत से अँगूठे तथा अनामिका के अतिरिक्त शेष सभी अँगुलियों को सीधा रखने से हृदय मुद्रा बनती है । 'शिरसे स्वाहा' बोलते समय इसी प्रकार की मुद्रा प्रदर्शित करनी चाहिए । अर्थात् मध्यमा तथा तर्जनी से शिर का स्पर्श करने से शिरोमुद्रा बनती है । 'शिखायै वषट् ' का उच्चारण करते हुए अँगूठे के द्वारा शिखा स्थान का स्पर्श करना चाहिए । मुट्ठी बंदकर अँगूठे को नीचे की ओर झुकाने पर शिखा मुद्रा बनती है । हाथ की उँगलियों को विस्तीर्ण करने पर कवच मुद्रा हो जाती है । अतः 'कवचाय हुम् ' कहते समय हाथ की सभी उँगलियों को परस्पर संयुक्त कर दायीं भुजा का तथा दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियों को एक साथ समायोजित कर बायीं भुजा का स्पर्श करना चाहिए। 'नेत्रत्रयाय वौषट्' का उच्चारण करते समय तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका— इन तीनों के सहारे दोनों नेत्रों तथा भौंहों के मध्यवर्ती स्थान को छूना चाहिए । 'नेत्राभ्यां वौषट्' कहते समय तर्जनी और मध्यमा उँगली से दोनों नेत्रों का स्पर्श करें । इन्हें ही नेत्रमुद्रा कहा जाता है । 'अस्त्राय फट्' बोलते समय दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा को मिलाकर बायीं हथेली पर आघात की-सी ध्वनि करें । इसी को अस्त्र-मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है ।

पञ्चोपचार पूजन की पंच मुद्राएँ

सामान्यतया देव-पूजन के पाँच प्रकार कहे गये हैं जो शास्त्रों में निम्न प्रकार से वर्णित हैं —

गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ।
अखण्डफलमासाद्य कैवल्यं लभते ध्रुवम् ।।

अर्थात् गंध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य । इनके नामानुसार ही इन्हें गंध मुद्रा, पुष्प मुद्रा, धूप मुद्रा, दीप मुद्रा एवं नैवेद्य मुद्रा कहा जाता है ।

अँगूठा तथा कनिष्ठा उँगली को एक साथ मिला देने से गंध मुद्रा, अँगूठे की जड़ में तर्जनी को लगाने पर पुष्प मुद्रा, तर्जनी की जड़ में अँगूठा लगाने से धूपमुद्रा, मध्यमा के मूल भाग में अँगूठा मिलाने से दीपमुद्रा तथा अनामिका की जड़ में अँगूठा मिलाने के फलस्वरूप नैवेद्य मुद्रा बन जाती है। इस मुद्रा का प्रयोग देवता को भोज्य वस्तु प्रदान करने के लिए किया जाता है । देवता के लिए नैवेद्य अर्पण करते समय पंच प्राणों की संतुष्टि के लिए पंच ग्रास अवश्य ही निवेदित करने चाहिए । बाएँ हाथ को कमलवत् कर लेने से ग्रास (कौर) मुद्रा बनती है ।

पञ्चप्राण की पाँच मुद्राएँ

वे मुद्राएँ इस प्रकार हैं— १. प्राण मुद्रा, २. अपान मुद्रा, ३. व्यान मुद्रा, ४. उदान मुद्रा एवं ५. समान मुद्रा ।

'प्राणाय स्वाहा' कहकर नैवेद्य अर्पण काल में कनिष्ठिका तथा अनामिका उँगली से अँगूठे को मिला देने पर प्राणमुद्रा होती है । तर्जनी, मध्यमा तथा अँगूठे को एक साथ समाविष्ट करने से अपान मुद्रा बनती है । इसके साथ 'अपानाय स्वाहा' का उच्चारण किया जाता है । 'व्यानाय स्वाहा' बोलते समय अनामिका, मध्यमा और अँगूठे को एक साथ मिलाना चाहिए। इसे व्यान मुद्रा कहा गया है । 'उदानाय स्वाहा' शब्द का उच्चारण करते हुए तर्जनी, मध्यमा और अँगूठे को समायोजित करने से यह उदान मुद्रा बनती है । 'समानाय स्वाहा' कहकर नैवेद्य निवेदित करते समय पाँचों उँगलियों को एक साथ मिलाकर किंचित् नीचे की ओर झुका देना चाहिए । वृहत् देव-पूजन कार्य में षोडशोपचार पूजन करने का विधान किया गया है ।

षोडशोपचार पूजन में प्रयुक्त होने वाली सोलह मुद्राएँ

सोलह उपचार इस प्रकार से बताये गये हैं—

आवाहन, आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य एवं विसर्जन ।

१. आवाहनी मुद्रा– दोनों हाथों को अंजलिबद्ध कर दोनों अंगुष्ठाओं को दोनों अनामिकाओं के मूल भाग पर मिलाना चाहिए ।

२. पद्म मुद्रा– दोनों हाथ के अँगूठों तथा उँगलियों को परस्पर योजित करने से पद्म मुद्रा बनती है । इसका प्रयोग आसन-प्रदान के लिए किया जाता है ।

३. स्वागत मुद्रा– दोनों हाथों को ऊपर उठाने से स्वागत की मुद्रा बनती है ।

४. पाद्य मुद्रा– दोनों हाथों की अंजलि प्रदर्शित करने से पाद्य मुद्रा होती है ।

५. अर्घ्य मुद्रा– अँगूठा और अनामिका उँगली को मिला देने से अर्घ्य की मुद्रा बनती है ।

६. आचमनी मुद्रा– दाहिने हाथ को पलटकर हथेली को ऊपर कर लें, पुनः कनिष्ठा के अतिरिक्त शेष चार उँगलियों को मिला लें तो आचमनी मुद्रा कही जाती है ।

७. स्नानमुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर नीचे की ओर झुकायें। तत्पश्चात् कनिष्ठा को अलग रखने से स्नानमुद्रा होती है ।

८. वस्त्रमुद्रा– दाहिने हाथ को पलटकर मध्यमा के साथ अँगूठे का स्पर्श कराने पर वस्त्र मुद्रा कही जाती है ।

९. आभूषण मुद्रा– उक्त कथित वस्त्र मुद्रा का स्पर्श अनामिका अँगुली के साथ कराने पर आभूषण मुद्रा होती है ।

१०. यज्ञोपवीत मुद्रा– वस्त्र मुद्रा का स्पर्श अनामिका से कराने पर यज्ञोपवीत मुद्रा कही जाती है ।

११. गन्ध मुद्रा– तर्जनी के अगले भाग से कनिष्ठा का स्पर्श हो जाने पर गंध मुद्रा बन जाती है ।

१२. पुष्प मुद्रा– हाथ को नीचे झुकाकर तर्जनी और अँगूठे को परस्पर स्पर्श कराने से यह मुद्रा होती है ।

१३. धूपमुद्रा– हाथ को सीधा रखकर तर्जनी के अग्रभाग को अँगूठे के अगले भाग से स्पर्श करायें ।

१४. दीप मुद्रा– तर्जनी अँगुली के अगले पोर से मध्यमा के अगले भाग का स्पर्श कराने पर दीपमुद्रा कही जाती है ।

१५. नैवेद्य मुद्रा– तर्जनी के द्वारा अनामिका के अग्रिम पर्व का स्पर्श कराने पर नैवेद्य मुद्रा बन जाती है ।

१६. विसर्जन मुद्रा– नीचे झुकाये हुए बाएँ हाथ पर दाहिने हाथ

को ऊर्ध्वमुखी रखकर अँगुलियों को परस्पर समाविष्ट कर पलट दें। यह देव विसर्जन की मुद्रा है। इसे संहारमुद्रा भी कहते हैं।

पाराशर संहिता में सोलह उपचारों के लक्षण इस प्रकार बताये गये हैं—

पाद्ययावाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम्।
द्वितीययासनं दद्यात्पाद्यं चैव तृतीयया।
अर्घ्यं चतुर्थ्या दातव्यं पञ्चम्याचमनं तथा।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रधौतकम्॥
यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च।
पुष्पं देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम्॥
द्वादश्या दीपकं दद्यात्त्रयोदश्या निवेदयेत्।
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणाः।
षोडशोद्वासनं कुर्याच्छेषकर्मणि पूर्ववत्॥

अर्थात् आवाहन, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, प्रदक्षिणा एवं उद्वासन।

षोडशोपचार पूजन- माहात्म्य

आवाहनं तु यो दद्यात् स च ऋतुफलं लभेत्।
आसनं रुचिरं दत्त्वा शक्रतत्त्वमवाप्नुयात्॥१॥
पाद्येन पातकं हन्यादर्घ्येणाप्नोत्यनर्घ्यताम्।
ततश्चाचमनं दत्त्वा सुचितं सुखितां व्रजेत्॥२॥

जो देवता का आवाहन करता है वह यज्ञफल को पाता है। श्रेष्ठ आसन प्रदानकर्ता इन्द्र की पदवी पाता है। पाद्यदान से पापों का क्षय होता तथा अर्घ्यदान से वह मूल्यवान् हो जाता है। आचमनीय देने से वह स्वस्थ-चित्त होकर सुखी बन जाता है ॥१-२॥

स्नानं व्याधि-भयं हन्याद् वस्त्रेणायुष्यवर्धनम्।
उपवीतं तु यो दद्याद् ब्रह्मवेतृत्वमेव च॥३॥
भूषणानि च यो दद्यादनापत्तिमवाप्नुयात्।
गन्धेन लभते काममक्षतैरक्षतं भवेत्॥४॥

स्नान कराने वाले को व्याधि का भय नहीं होता तथा वस्त्रदान से आयुवर्धन होता है। देवता को उपवीत अर्पण करने वाला वेदज्ञ बन जाता

है । आभूषण अर्पित करने वाला व्यक्ति विपत्तियों से बच जाता है । गंधार्पण के द्वारा कामोपलब्धि तथा अक्षतों (चावल के दानों) से वह स्वयं क्षतरहित हो जाता है ॥३-४॥

नानापुष्पप्रदानेन स्वर्गे राज्यमवाप्नुयात् ।
धूपो दहति पापानि दीपो मृत्युविनाशनः ।।५।।
सर्वमानस्तु नैवेद्यं दत्त्वा तृप्तिरतो भवेत् ।
मुखवासनदानेन कीर्तिमान् भवति ध्रुवम् ।।६।।

विविध भाँति के पुष्पार्पण से मनुष्य स्वर्गलोक का राज्य भोगता है। धूपदान से पापों का शमन तथा दीपदान से मृत्यु का निवारण होता है । नैवेद्य निवेदित करने से सम्मानित होकर संतुष्टि प्राप्त करता है । ताम्बूल, इलायची आदि चढ़ाने से नि:सन्देह वह यशस्वी बन जाता है ॥५-६॥

नीराजनेन शुद्धात्मा दर्पणेन प्रकाशयेत् ।
फलदः पुत्रवान्मर्त्यस्ताम्बूलात् स्वर्गमाप्नुयात् ।।७।।
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् पापं हन्ति पदे पदे ।
दण्डप्रणामं यः कुर्यद्दिवमुद्दिश्य सन्निधौ ।।८।।

नीराजन (आरती) करने से अन्त:करण की शुद्धि होती है, दर्पण दिखाने से मनुष्य प्रकाशवान् बनता है । फल चढ़ाने से पुत्रवान् तथा पान का अर्पण करने से स्वर्ग-सुखभोग प्राप्त करता है । देव-प्रदक्षिणा करने वाले के पातक एक-एक कदम पर नष्ट हो जाते हैं । देवता को नमस्कार करने से देवता का सान्निध्य पाता, ॥७-८॥

वर्षाणि वसते स्वर्गे देहान्ते रेणुसंख्यया ।
स्तोत्रेण दिव्यदेहोऽपि वाग्मी भवति तत्क्षणात् ।।९।।
पुराण पठनेनैव सर्वपापक्षयो भवेत् ।।१०।।

(शैव रत्नाकर)

तथा बालुका-कणों की संख्या के समान उतने ही वर्षों तक निवास करता है । स्तोत्र-पाठ करने वाला शीघ्र ही दिव्यदेही बनकर प्रखर वक्ता हो जाता है । पुराण का पाठक सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है ॥९-१०॥

इस प्रकार षोडशोपचार पूजन-माहात्म्य समाप्त ।

विष्णुपूजन में प्रयुक्त होने वाली उन्नीस मुद्राएँ :

वे मुद्राएँ इस प्रकार से हैं— शंख, चक्र, गदा, पद्म, वेणु, श्रीवत्स, कौस्तुभ, वनमाला, ज्ञानमुद्रा, बिल्वाख्य, गरुड़, नारसिंही, वाराह, हयग्रीव, परशु, धनुष, बाण, काम तथा त्रैलोक्यमोहिनी ।

१. शंखमुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर उसमें बाएँ हाथ के अँगूठे को रखें । अब दाहिनी मुट्ठी को ऊपर की ओर करके उसके अंगूठे को विस्तृत करें । पुनः बाएँ हाथ की समस्त अँगुलियों को परस्पर एक-दूसरे के साथ मिलाकर फैलायें । बाएँ हाथ की विस्तीर्ण उँगलियों को दाहिनी ओर मोड़कर दाहिने अँगूठे का स्पर्श करायें ।

२. चक्रमुद्रा– इसके लिए दोनों हाथों को इस प्रकार सामने रखें कि हथेलियाँ ऊपर की ओर उठी हुई हों । पुनः दोनों हाथों की अँगुलियों को सिकोड़ कर मुट्ठी बना डालें । तत्पश्चात् दोनों अँगूठों को नीचे कर एक-दूसरे के साथ स्पर्श करायें तथा तर्जनियों के अतिरिक्त दोनों हाथ की उँगलियों को विस्तृत करें । इसके बाद दोनों तर्जनियों को भी अँगूठे की तरह स्पर्श कराना चाहिए ।

३. गदामुद्रा– दोनों हाथ की हथेलियों को एक साथ मिला लें । पुनः दोनों हाथ की सभी अँगुलियों को परस्पर गुंफित कर लें । अब मध्यमा अंगुलियों को आपस में मिलाकर सामने की ओर विस्तारित कर दें तो ऐसी स्थिति में वह गदामुद्रा बन जाती है ।

४. पद्ममुद्रा– दोनों हाथ के अँगूठों तथा अँगुलियों को मिला देने से पद्ममुद्रा बन जाती है ।

५. वेणुमुद्रा– बाएँ अँगूठे को होंठ से स्पर्श करायें । बायीं कनिष्ठा को दाहिने अँगूठे के साथ स्पर्शित करें । दाहिनी कनिष्ठा को फैलाये रखें । अब दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका को कुछ झुकाकर आगे-पीछे चालित करते रहें तो बाँसुरीवादन की वेणुमुद्रा बन जाती है ।

६. श्रीवत्समुद्रा–दोनों हाथ की हथेलियों को आमने-सामने रखकर उनकी मध्यमा तथा अनामिका उँगलियों को किंचित् झुकाकर अँगूठों द्वारा दबा लें । अब दोनों हाथ की तर्जनी को अपने-अपने हाथ की कनिष्ठा-मूल में लगा लें अर्थात् दायीं तर्जनी को बायीं कनिष्ठा के मूल में और बायीं तर्जनी को दाहिनी तर्जनी के मूल पर्व पर लगाने से श्रीवत्समुद्रा कही जाती है ।

७. कौस्तुभमुद्रा– पहले दाहिनी कनिष्ठा उँगली को अनामिका के पीछे लगा लें, बायीं कनिष्ठा को दाहिनी तर्जनी से मिलायें। दाहिने अँगूठे की जड़ में बायीं अनामिका को बाँध लें, परन्तु शेष उँगलियों का स्पर्शन बाएँ अँगूठे से होता रहे तो कौस्तुभ मुद्रा होती है।

८. वनमालामुद्रा– दोनों हाथों की तर्जनी तथा अँगूठे को गले से लेकर पैर तक मिलाकर ले जाने की स्थिति में वनमाला मुद्रा होती है।

९. ज्ञानमुद्रा– दाहिने हाथ के अँगूठे से तर्जनी को समायोजित कर गोलाकार बनाते हुए शेष सभी अंगुलियों को विस्तृत कर हृत्प्रदेश में लगाने पर ज्ञानमुद्रा कही जाती है।

१०. बिल्वमुद्रा– बाएँ अँगूठे को दाहिने अँगूठे से लपेट लें, पुनः दाहिने अँगूठे को उसी हाथ की शेष चारों अँगुलियों का आवेष्टन करें। इस प्रकार का स्वरूप बनाकर हृदय से स्पर्शित करने को बिल्वमुद्रा की संज्ञा दी जाती है। कुछेक ग्रन्थों में इस मुद्रा के प्रदर्शन-काल में क्लीं बीज के उच्चारण करने का भी उल्लेख मिलता है।

११. गरुड़मुद्रा– दोनों हाथों के पिछले भाग को एक-दूसरे के साथ संयोजन करने के अनन्तर नीचे लटकी हुई दोनों तर्जनी तथा कनिष्ठा को परस्पर जोड़ लें। पुनः दोनों हाथ की अनामिका तथा मध्यमा को विपरीत दिशा में पक्षी के पंखों की तरह ऊपर-नीचे हिलाते-डुलाते रहें। इसे ही गरुड़मुद्रा कहा जाता है।

१२. नारसिंही (नृसिंह) मुद्रा– दोनों हाथों को जंघाओं के बीच से बाहर निकालकर पृथिवी पर टिकायें। अब ठुड्डी और होंठों का बार-बार स्पर्श करते रहें तथा मुख खोलकर जीभ को इधर-उधर घुमाते -फिराते रहें। यह मुद्रा नृसिंह भगवान के लिए अत्यन्त प्रियकारक है।

१३. वाराहमुद्रा– दाहिने हाथ को पलटकर बायीं हथेली पर स्थापित करें। अब बाएँ हाथ की उँगलियों को इस प्रकार संकुचित कीजिये कि वे दाहिनी हथेली को छूने लग जायँ। तत्पश्चात् बाएँ हाथ की मुड़ी हुई अंगुलियों को दाहिने हाथ की अँगुलियों द्वारा पकड़ लेवें।

१४. हयग्रीवमुद्रा– वामहस्त के नीचे दक्षिण हस्त को लगाकर उनकी उँगलियों को किंचित् झुका लें। अब बाएँ हाथ की अनामिका तथा मध्यमा के सहारे उनको उत्थित करते हुए मुख के समीप ले जायँ। पुनः मध्यमा और अनामिका को खोल दें तो हयग्रीव मुद्रा बनती है।

१५. धनुर्मुद्रा (धनुष मुद्रा)– दाएँ हाथ की तर्जनी को बायीं ध्यमा से और बायीं अनामिका को दाहिनी कनिष्ठा के साथ मिला लें। इस कार उनकी सम्मिलित अवस्था में ही अनामा और कनिष्ठा को अँगूठे से ाबकर बाएँ कंधे का स्पर्शन करें।

१६. बाणमुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी बंद कर यदि उसकी तर्जनी ँगली सीधी खड़ी कर दी जाय तो बाणमुद्रा कही जाती है।

१७. परशुमुद्रा– दोनों हाथों की हथेलियों को आपस में मिलित कर हाथ को ऊपर-नीचे इस तरह चलायमान करें जिस प्रकार कुल्हाड़ी लाने के समय की जाती है।

१८. काममुद्रा– दोनों हाथों को परस्पर मिलाकर सम्पुटित कर लें। ुनः दोनों तर्जनियों को दोनों मध्यमाओं पर स्थापित करें। साथ ही, दोनों अँगूठों को भी मध्यमा से स्पर्श कराते रहना चाहिए।

१९. त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा– दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द कर उन्हे रस्पर मिलायें तथा अँगूठों से स्पर्शित करते हुए ऊपर की ओर उठायें तो ह मुद्रा बनती है।

इस प्रकार विष्णु-पूजन की मुद्राएँ समाप्त हुईं।

शिव-पूजन हेतु प्रयुक्त होने वाली दश मुद्राएँ

शिव-पूजन से पूर्व षडंगन्यास कर्म सम्पन्न करना भी आवश्यक है जिसे क्रमानुसार नीचे उल्लिखित किया गया है।

१. हृदयमुद्रा– दोनों हाथ की मुट्ठियाँ बंदकर अँगूठों को बाहर निकालें और उन्हें मिलाकर हृदय का स्पर्श करें।

२. शिरोमुद्रा– तर्जनी को अलग रख मुट्ठी बंद कर शिरोभाग का पर्श करें।

३. शिखामुद्रा– तर्जनी और कनिष्ठा उँगली को अलग रख बंद की यी मुट्ठी से शिखा का स्पर्श करें। इस मुद्रा में तर्जनी नीचे की ओर तथा निष्ठा ऊर्ध्वमुखी रहती है। इसमें दोनों तर्जनी के तथा दोनों कनिष्ठा के गले भाग मिले हुए रहते हैं। इस शिखामुद्रा के द्वारा सर्वविघ्नों का शमन ता है।

४. कवचमुद्रा– अँगूठों के अगले पर्व को मिलाकर तर्जनी को

त्रिभुजाकार रूप देते हुए शिर से हृदय तक लाने से अभयदायक कवचमुद्रा बनती है

५. नेत्रमुद्रा– हाथों को नेत्रों के समीप ले जाकर कनिष्ठा को अंगूठों से समाविष्ट कर दें। तदनंतर मध्यमा को सीधी रखकर शेष उँगलियों को नीचे की ओर थोड़ा झुका देने से नेत्रमुद्रा बनती है। इस मुद्रा के द्वारा भूत-पिशाचादि का निवारण होता है।

६. अस्त्रमुद्रा– दोनों हाथ की हथेलियों से ताली बजाने से यह मुद्रा होती है।

शिव-पूजन की दश मुद्राएँ इस प्रकार हैं— लिंग, योनि, त्रिशूल, अक्षमाला, वर, अभय, मृग, खट्वांग, कपाल एवं डमरू।

१. लिङ्गमुद्रा– दाहिने हाथ के अंगूठे को सीधा रखकर बाकी की चारों उँगलियों को आपस में ग्रथित कर लें। पुनः बाएँ अँगूठे को दाहिने अँगूठे के मूल भाग पर लगा लें तो लिंगमुद्रा बन जाती है।

२. योनिमुद्रा– दोनों कनिष्ठाओं, तर्जनियों तथा अनामिकाओं को परस्पर आबद्ध कर लें। अब अनामिका को मध्यमा से पहले थोड़ा मिलाकर उन्हें सीधा करे। इसके अनंतर दोनों अँगूठों को एक-दूसरे के ऊपर स्थापित कर दें। इसे योनिमुद्रा कहते हैं।

३. त्रिशूलमुद्रा– अँगूठों के साथ दोनों कनिष्ठाओं को मिलाकर शेष उँगलियों को सीधा खड़ी करें।

४. अक्षमालामुद्रा– दोनों तर्जनियों और अँगूठों के अग्रभाग को मिला देने पर यह मुद्रा बन जाती है।

५. वरमुद्रा– दाहिनी हथेली को नीचे की ओर झुकाकर हाथ को विस्तीर्ण कर दें। इसे वरमुद्रा कहते हैं।

६. अभयमुद्रा– बाएँ हाथ को ऊपर की ओर करके हथेली को खुली छोड़ दें तो अभयमुद्रा हो जाती है।

७. मृगमुद्रा–अनामिका तथा अँगूठे को मिलाकर उस पर मध्यमा उँगली का स्थापन करे, शेष दोनों उँगलियाँ ऊपर की ओर एक सीध में खड़ी रखें।

८. खट्वांगमुद्रा– दाहिने हाथ की पूरी उँगलियों को आपस जोड़कर ऊर्ध्वमुख करें। यह मुद्रा शिव के लिए परम प्रिय है।

९. कपालाख्यमुद्रा– बाएँ हाथ को पात्र के समान गहरा बनाकर उसे बाएँ अंक में रखकर उठा लें । इसे कपालमुद्रा कहते हैं ।

१०. डमरूमुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी हल्की-सी बंद कर मध्यमा को उठाकर कान के निकट तक ले जायें ।

गणेशपूजन की सप्त मुद्राएँ

गणेशार्चन में सात मुद्राएँ निम्नलिखित प्रकार से प्रयुक्त की जाती हैं, जैसे— दन्त, पाश, अंकुश, विघ्न, मोदक, परशु तथा बीजपूर ।

१. दन्तमुद्रा– दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बंदकर उनकी मध्यमाओं को निकालकर सीधा रखें । इसे ही दंतमुद्रा कहा जाता है ।

२. पाशमुद्रा– दोनों हाथ की मुट्ठियाँ बंदकर बायीं तर्जनी को दाहिनी तर्जनी से लपेट लें । पुन: उन तर्जनियों पर अँगूठों से दबाव दें । तत्पश्चात् दायीं तर्जनी के अगले पर्व को थोड़ा पृथक् करें तो पाशमुद्रा हो जाती है ।

३. अंकुशमुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी बंदकर तर्जनी को बाहर निकालें । पुन: उसे अधोमुख करके कुछ वक्राकार कर लें तो अंकुश मुद्रा कही जाती है । इसकी एक दूसरी विधि यह भी है कि मध्यमा को सीधी रखकर उसके बीच के भाग में तर्जनी को टेढ़ी करके लगायें ।

४. विघ्नमुद्रा– मुट्ठी बंदकर तर्जनी तथा मध्यमाओं के बीच में अँगूठे को रखकर उसके अगले भाग को कुछ बाहर निकालें । तदुपरान्त मध्यमाओं को नीचे की ओर झुका दें तो विघ्नमुद्रा कही जाती है ।

५. मोदकमुद्रा– दाहिने हाथ की उँगलियों को मिलाकर गोलाकार बना लेने से मोदक (लड्डू) मुद्रा बनती है

६. परशुमुद्रा– दोनों हाथों को एक में मिलाकर उनकी अँगुलियों का समायोजन कर उन्हें तिरछा कर देना ही परशुमुद्रा कहलाती है ।

७. बीजपूरमुद्रा– दोनों हाथों को आपस में मिलाकर बिजौरा नीबू के सदृश दिखाने पर बीजपूर मुद्रा होती है ।

सरस्वती-पूजन में प्रयुक्त होने वाली मुद्राएँ

सरस्वतीपूजन की चार मुद्राएँ निम्नलिखित प्रकार से हैं— वीणा, पुस्तक, व्याख्यान, अक्षमाला ।

वीणामुद्रा– दोनों हाथों को ऐसी स्थिति में रखें मानो वीणावादन किया जा रहा हो ।

पुस्तकमुद्रा– बाएँ हाथ की मुट्ठी बाँधकर अपने सम्मुख रखें ।

व्याख्यानमुद्रा– दायें हाथ की तर्जनी तथा अँगूठे के अगले पोर को मिलाकर हाथ को ऊपर की ओर उठायें और शेष तीनों अंगुलियों को विस्तृत कर दें तो व्याख्यानमुद्रा होती है । यह सरस्वती की अत्यन्त प्रियकारी मुद्रा है ।

अक्षमालामुद्रा– तर्जनी के पहले पर्व को अँगूठे से मिलाये । तदनन्तर शेष सभी उँगलियों को ग्रथित कर देने से अक्षमाला मुद्रा बनती है। इसी को जपमाला मुद्रा भी कहा जाता है । पुस्तकमुद्रा को ही विद्यामुद्रा के नाम से भी जाना जाता है ।

लक्ष्मीपूजन हेतु प्रयोग की जाने वाली षडंग मुद्राएँ

हृदयमुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी बंदकर उसके अंदर बाएँ अँगूठे को सीधा रखकर हृदय के निकट ले आयें । इस मुद्रा के द्वारा बुद्धि-विवेक का संवर्धन होता है ।

शिरोमुद्रा– हाथ की सम्पूर्ण उँगलियों को विस्तृत कर अँगूठे का स्पर्श करें । इस मुद्रा के द्वारा 'शिरसे स्वाहा' बोलकर शिरोभाग को छूना चाहिए । इसके द्वारा मंत्रदेवता को निकटस्थ करने में सहायता मिलती है।

शिखामुद्रा–हाथ की मुट्ठी बाँधने के बाद अँगूठे को नीचे की ओर झुकाने से शिखामुद्रा बनती है । इसमें 'शिखायै वषट्' कहना चाहिए ।

कवचमुद्रा– दोनों हाथ की उँगलियों को आगे की ओर ले जाकर पूरा फैला दें । अब दोनों मध्यमा को मोड़कर कलाई से मिलायें । इस मुद्रा में 'कवचाय हुम् ' मंत्र के द्वारा दोनों कंधों का स्पर्शन करें । इस मुद्रा के द्वारा शरीर की सुरक्षा होती है । अनुष्ठानकर्ता को भूत-प्रेत- पिशाचादि की बाधा का कभी सामना नहीं करना पड़ता ।

नेत्रमुद्रा– दोनों हाथों की उँगलियों को आपस में जोड़कर हथेली की पीठ से लगायें । पुनः दोनों तर्जनी के अगले भाग को मिला दें तो बीच में नेत्राकार एक छिद्र-सा दिखाई पड़ने लगता है । अब दोनों अँगूठों को पलटकर तर्जनी अँगुली की जड़ में लगा लें । इस मुद्रा के प्रदर्शन-काल में 'नेत्राभ्यां वौषट् ' का मंत्रोच्चार करना चाहिए ।

अस्त्रमुद्रा– तर्जनी और अँगूठे से दशों दिशाओं में ध्वनि करते हुए हाथों को इस प्रकार घुमावें मानों किसी को दूर भगाने का संकेत दिया जा रहा हो । ऐसी अवस्था में चतुर्दिक् दृष्टि का क्षेपण करते रहने से अनिष्टकारी आत्माएँ पलायित हो जाती हैं ।

उपांगमुद्रा– दाहिने हाथ की चारों उँगलियों को परस्पर समायोजित कर लें । पुन: उनके मूल भाग में अँगूठे को आकुंचित करके लगा लें तो उपांगमुद्रा कही जाती है । इसी मुद्रा के द्वारा शरीर के छह उप-अंगों (उदर, पीठ, भुजा, ऊरु, जानु एवं पैर) का स्पर्श करना चाहिए ।

लक्ष्मीपूजन में प्रदर्शित की जाने वाली मुद्राएँ

जिस प्रकार उपासक के लिए देवपूजन से पूर्व प्रार्थना की मुद्रा दिखानी आवश्यक बतलायी गयी है उसी प्रकार लक्ष्मीपूजन के समय महाश्री मुद्रा अपनायी जाती है । इसके लिए दोनों हाथों को एक साथ मिलाकर इस प्रकार सामने की ओर रखें कि उनकी दोनों हथेलियाँ एक-दूसरे के सामने रहें। अब मध्यमा उँगली से बाकी सभी उँगलियों को मिला लें ताकि दोनों हाथों की मध्यमा एक-दूसरे से स्पर्शित होती रहे । इसे ही महाश्रीमुद्रा के नाम से जाना जाता है । यह मुद्रा सुख-सौभाग्यवर्धिनी, समस्त दोषनिवारिणी तथा सद्य:सिद्धिदायिनी मानी जाती है ।

शक्तिमुद्रा– बाएँ हाथ को सामने की ओर फैलाकर उँगलियों को अलग रखें । अब अँगूठे को मध्यमा के अगले पर्व से इस प्रकार संयोजन करें कि देखने में एक सेतु-सा आभासित हो । पुन: उसे घुमाकर हृदय की ओर ले आने से शक्तिमुद्रा का रूप बनता है । यह मुद्रा अत्यन्त सुखकारिणी है । इन दोनों मुद्राओं— महाश्री तथा शक्तिमुद्रा के योग से महालक्ष्मी की प्रसन्नता प्राप्त होती है ।

लक्ष्मीमुद्रा– सर्वप्रथम चक्रमुद्रा (विष्णुपूजन के अंतर्गत चक्रमुद्रा दी गयी है) बनाकर मध्यमाओं को विस्तृत कर दें । तत्पश्चात् कनिष्ठा और अनामिका के बीच में से अँगूठे को बाहर की ओर कर लें । सम्पूर्ण ऐश्वर्यो को देने वाली यह लक्ष्मीमुद्रा कही जाती है ।

लक्ष्मी-बीजमन्त्र प्रयोग

१. 'ऐं श्री ह्रीं क्लीं'– यह चार अक्षरों वाला लक्ष्मी का बीजमंत्र है ।

२. **'ॐ नमः कमलवासिन्यै स्वाहा'**– यह दश अक्षरात्मक बीजमंत्र है

३. **'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नमः'** – यह सत्ताईस वर्णात्मक मन्त्र कहा गया है ।

(शारदातिलक)

शक्ति-पूजा में उपयोगी मुद्राएँ

देवपूजन में अंगन्यास की जो विधियाँ पूर्व में उल्लिखित की गयी हैं उसी प्रकार की विधि शक्ति-पूजन में भी अपनायी जाती है । परन्तु इनका उद्देश्य कुछ भिन्न प्रकार का होता है, जैसे जब 'हृदयाय नमः' कहा जाता है तब अपनी आत्मा को सुप्तावस्था से जगाने का भाव निहित होता है । इसमें तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका उँगली के द्वारा हृदय का स्पर्श करना होता है । कुछ लोगों के मत से पाँचों उँगलियों के अगले भाग को मिलाकर स्पर्श करने का विधान पाया जाता है । कहीं-कहीं हाथ को विस्तीर्ण कर उँगलियों को पृथक् रखते हुए शेष चारों अंगुलियों से ही स्पर्शन का नियम पाया जाता है ।

'शिरसे स्वाहा'– कहने का तात्पर्य यह होता है कि विषयासक्त मन को बाह्य वृत्तियों से हटाकर अन्तर्मुखी बनायें । इसमें तर्जनी और मध्यमा के साथ शिरोभाग का स्पर्श करना होता है । 'हृदयाय नमः एवं शिरसे स्वाहा' के उच्चारण से आत्मतेज की प्रदीप्ति होती है उसी को स्थायी रूप से दृढ़ीभूत करने की भावना से 'शिखायै वषट्' का उच्चारण किया जाता है । इसके लिए दाहिने अंगूठे को अधोमुख रखते हुए मुट्ठी बंदकर शिखा का स्पर्श करना बताया गया है । 'कवचाय हुम्' बोलकर देह की भावना मन्त्रस्वरूप में की जाती है । इसमें दाहिने हाथ की पाँचों उँगलियों के द्वारा बाएँ हाथ का तथा बाएँ हाथ की सम्पूर्ण उँगलियों से दाहिने हाथ का स्पर्श करना चाहिए । हृदय, शिर, शिखा तथा कवच के द्वारा जिस तेजोमयी भावना की परिकल्पना की गयी उस तेजपुंज के दर्शन को अब 'नेत्रत्रयाय वौषट्' कहकर तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका उँगली के द्वारा दोनों नेत्रों तथा भौंहों के मध्यवर्ती भाग का स्पर्श करना कहा गया है । इसके लिए तर्जनी के द्वारा दक्षिण नेत्र का, मध्यमा से वाम नेत्र का और अनामिका से भौंहों के बीच के स्थान का स्पर्श करने का विधान बतलाया गया है ।

'अस्त्राय फट्' कहने का अभिप्राय है — अज्ञानजनित दोष का उन्मूलन होकर यथार्थ ज्ञान का उदय होना । उक्त मन्त्र बोलते हुए नाराच मुद्रा के द्वारा दिग्बंधन किया जाता है । इसमें मध्यमा और अँगूठे को मिलाकर शब्दध्वनि की जाती है जिसे लोकभाषा में चुटकी बजाना भी कहा जाता है । जँभाई लेने पर जनसाधारण में इसका प्रयोग देखने में आता है । इसके अवलम्बन से प्रमाद का निवारण होता है । तुलसीदासजी ने भी रामचरितमानस में लिखा है—

राम राम कहि जो जमुहाहीं ।
तिन्हिं न पाप-पुंज समुहाहीं ।।

यही कारण है कि इसका प्रचलन लोक-व्यवहार में अधिकता से देखने में आता है ।

'क्षिति जल पावक गगन समीरा' के अनुसार इन्हीं पंचतत्त्वों— पृथिवी (क्षिति), जल, अग्नि (पावक) आकाश (गगन) और वायु (समीर) से सृष्टि की रचना होती है । हाथ की पाँचों उँगलियाँ इन पंचतत्त्वों की भूमिका निभाती हैं, जैसे— कनिष्ठा उँगली से पृथिवीतत्त्व, अनामिका से जलतत्त्व, मध्यमा से अग्नितत्त्व, तर्जनी से वायुतत्त्व तथा अँगूठे से आकाशतत्त्व का संकेत मिलता है, क्योंकि जिस प्रकार आकाश खुला रहता है उसी प्रकार अँगूठा भी सभी उँगलियों से पृथक् रहता है ।

जिस प्रकार गणेशादि देवताओं के पूजन में कुम्भ-स्थापन का विधान होता है उसी भाँति देवी दुर्गा, चंडिका आदि के पूजन में भी घट-स्थापन काल में नव प्रकार की मुद्राएँ भी प्रदर्शित की जाती हैं जो इस प्रकार हैं— मत्स्य, अस्त्र, कवच, धेनु, संरोधिनी, मुसल, चक्र, महामुद्रा तथा योनिमुद्रा ।

१. मत्स्यमुद्रा– बाएँ हाथ की हथेली को पलटकर उसके ऊपर दाहिनी हथेली को भी उलटा कर स्थापित करें । तदनन्तर अँगूठों को दाएँ -बाएँ चलायमान करते रहें तो मत्स्यमुद्रा हो जाती है । कुछ अन्य लोगों के कथनानुसार बायीं हथेली पर दाहिनी हथेली टिकाकर अँगूठे को अगल-बगल में रख देने से भी यही मुद्रा होती है ।

२. अस्त्रमुद्रा– दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा उँगली से बाएँ हाथ पर चोट पहुँचाने से अस्त्रमुद्रा कही जाती है ।

३. कवचमुद्रा– हाथ की सम्पूर्ण उँगलियों को कंधों से नाभिस्थल तक ले जाना ही कवचमुद्रा है ।

४. धेनुमुद्रा– इस मुद्रा के लिए दोनों हथेलियों को आपस में संलग्न कर दाहिनी अनामिका को वाम कनिष्ठा से, वाम अनामिका को दक्षिण कनिष्ठा से, दायीं मध्यमा को बायीं तर्जनी के साथ तथा बायीं मध्यमा को दायी तर्जनी के साथ समायोजित किया जाता है । दोनों अँगूठे बाहर की ओर अलग निकले रहते हैं ।

५. संरोधिनी मुद्रा– इसमें दोनों हाथ की मुट्ठियाँ बंदकर उसके अंदर अँगूठे को दबाना पड़ता है । दैवी-शक्ति को पूजास्थल तक सीमित रखना ही इस मुद्रा का उद्देश्य होता है ।

६. मुसलमुद्रा– बायीं मुट्ठी पर दाहिनी मुट्ठी के स्थापन से मुसलमुद्रा होती है । यह मुद्रा सर्वविघ्नविनाशिनी कही जाती है ।

७. चक्रमुद्रा– दोनों हाथ की हथेलियो को एक-दूसरे के सम्मुख रखकर उन्हें विस्तृत कर दें, फिर दोनों कनिष्ठाओं को अँगूठों से सटा देने पर चक्रमुद्रा बनती है ।

८. महामुद्रा– दोनों हथेलियों को एक-दूसरे के सामने रखकर उँगलियों को परस्पर ग्रथित कर लें, पुनः अँगूठों को मध्यमा उँगली से मिला दें तो महामुद्रा बन जाती है । शक्ति की उपासना करने वालों के लिए यह मुद्रा मुक्तिप्रदायिनी कही गयी है । इस मुद्रा प्रदर्शन के लिए एक अन्य प्रकार यह भी है कि दोनों अँगूठों का आपस में समायोजन कर शेष सभी अँगुलियों को विस्तीर्ण कर दें तो भी महामुद्रा हो जाती है । इसकी उपयोगिता परमीकरण मुद्रा हेतु भी मानी गयी है । (शारदातिलक)

९. योनिमुद्रा– सर्वप्रथम दोनों मध्यमाओं को दोनों तर्जनियों पर बैठा लें । तदनन्तर इसी प्रकार दोनों कनिष्ठाओं को अनामिका पर स्थापित करें । पुनः सबको एक साथ मिलाकर अँगूठों के द्वारा दबाव डालने पर योनिमुद्रा होती है । इसका दूसरा प्रकार यह है कि कनिष्ठाओं को परस्पर जोड़कर अनामिका को तर्जनी द्वारा दबायें । अब दोनों मध्यमा को विस्तार देते हुए उनकी सिकुड़न के साथ अँगूठे को कनिष्ठाओं के निकट लाने से भी योनिमुद्रा बन जाती है ।

कलश-स्थापन के पश्चात् शंखस्थापन का भी नियम पालन करना आवश्यक होता है । इसके लिए पाँच मुद्राओं के प्रदर्शन का विधान कहा गया है जो निम्न प्रकार से हैं— शंख, मुसल, चक्र, योनि तथा महामुद्रा ।

इसकी विधि यह है कि दायीं मुट्ठी बंदकर बाएँ अँगूठे को दबाएँ ।

अब बाएँ हाथ की सभी उँगलियों को दायीं मुट्ठी के ऊपर टेढ़ा करके रखें। पुनः दाएँ अँगूठे के अगले भाग को बायीं तर्जनी के अग्रिम भाग से स्पर्श करें। उपर्युक्त कथित शेष चारों मुद्राओं का विवरण कलश-पूजन के अंतर्गत दिया जा चुका है।

देवपूजन के समय देवों की पूजा के साथ-ही-साथ उनके आयुधों की पूजा एवं मुद्रा-प्रदर्शन को अनिवार्य माना गया है। भगवती अपने हाथों में जिन-जिन अस्त्र-शस्त्रों को धारण करती हैं उन सभी की मुद्राओं का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

१. **खड्गमुद्रा–** दाएँ अँगूठे से दायीं अनामिका और कनिष्ठा को दबाकर तर्जनी तथा मध्यमा को मिलाकर सीधा फैला दें तो खड्गाकृति की मुद्रा बन जाती है। इसके लिए दूसरा नियम यह है कि बाएँ हाथ को ऊपर की ओर करके तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को परस्पर मिला ले, फिर उसे सीधा विस्तृत करें। अब अँगूठे द्वारा कनिष्ठा को दबाने से खड्ग मुद्रा बन जाती है। यह मुद्रा शत्रुसंहारिणी होती है। षट्कर्मों के अंतर्गत मारण, उच्चाटन, विद्वेषण आदि कर्मों के लिए इसी मुद्रा का प्रयोग किया जाता है किन्तु शांतिकरण कर्म के निमित्त प्रथम प्रकार की मुद्रा का आश्रयण करना चाहिए।

२. **गदामुद्रा–** दोनों हाथों को मिलाकर सभी उँगलियों को समाविष्ट करें। अब दोनों विस्तरित हुए अँगूठों का उनसे स्पर्श करा देने पर गदामुद्रा कही जाती है।

३. **बाणमुद्रा–** दाहिने हाथ को आगे की ओर सीधा रखते हुए मुट्ठी बन्द कर लें और तर्जनी उँगली को सामने एक सीध में रखें तो बाण मुद्रा बनती है

४. **धनुषमुद्रा–** बायीं मध्यमा के अगले पर्व से तर्जनी के अगले पर्व को छूते हुए हाथ को सिकोड़कर कंधे के निकट लाने से धनुष मुद्रा कही जाती है। अथवा केवल बाएँ हाथ को ऐसी स्थिति में रखना जिस प्रकार कोई धनुर्धर रखता है। धनुषमुद्रा का यह एक दूसरा प्रकार है।

५. **परिघमुद्रा–** परिघ का अर्थ होता है – मुसल के समान काष्ठनिर्मित दंड। दरवाजा बंद कर लेने के पश्चात् इस मोटे दंड को द्वार के अगल-बगल बने हुए छिद्रों में लगा दिया जाता है। लोकभाषा में इसे 'गोंड़ा' भी कहा जाता है। इसकी मुद्रा के लिए हाथ को आगे की ओर

विस्तृत कर मुट्ठी बाँध लें और बाहर की ओर केवल मध्यमा का ही प्रदर्शन करना चाहिए । इस मुद्रा का उद्देश्य शत्रु की गति को स्तंभित करना होता है ।

६. त्रिशूलमुद्रा– दाएँ अँगूठे से दाहिनी कनिष्ठा को दबाकर बाकी तीनों उँगलियों को सीधे आकार में रखने से यह त्रिशूल मुद्रा बनती है ।

७. हलमुद्रा– बायीं मुट्ठी को अधोमुख करके दाएँ हाथ का स्पर्श करने से हलमुद्रा कही जाती है ।

८. घण्टामुद्रा– बायीं मुट्ठी का घूर्णन करने से ही घण्टा मुद्रा हो जाती है ।

९. भुशुण्डीमुद्रा– बायीं तर्जनी को सिकोड़ कर उसके बीच वाले भाग से दायीं तर्जनी के अगले पर्व का स्पर्श करें । दायीं तर्जनी के बीच वाले भाग से अब बाएँ अँगूठे का अगला भाग लगा लें तो भुशुंडी मुद्रा कही जाती है । यह एक विशेष प्रकार का प्राचीन अस्त्र होता था जिसकी सहायता से लम्बी दूरी तक की मार की जा सकती थी । आधुनिक युग में इसकी तुलना प्रक्षेपास्त्र से की जाती है ।

१०. कुण्डिकामुद्रा– दोनों हाथों को कुण्ड के सदृश गोलाकार आकृति करने से कुण्ड मुद्रा बन जाती है ।

११. दण्डमुद्रा– दायीं मुट्ठी बाँधकर पुनः प्रसारण करने से दण्डमुद्रा कही जाती है ।

१२. शक्तिमुद्रा– बायीं मुट्ठी के ऊपर दायीं मुट्ठी स्थापित करके शिर से स्पर्श कराने पर शक्तिमुद्रा बन जाती है ।

१३. चर्ममुद्रा– बाएँ हाथ को किंचित् तिरछा रखकर उँगलियों को सिकोड़ते हुए कुछ उठा हुआ रखने से ढाल- जैसी आकृति बन जाती है । क्योंकि ढाल का आकार भी कच्छप-पृष्ठ के समान माना जाता है । इसके द्वारा खड्ग - प्रहार से बचाव किया जाता था । इसका निर्माण कछुए की पीठ या गैंडे की खाल से किया जाता था ।

१४. पाशमुद्रा– पहले बायीं मुट्ठी को बंद कर दाहिनी मुट्ठी बाँध लें । अब बायीं तर्जनी को दायी तर्जनी से सटा लें । यदि उन दोनों का अँगूठे के अगले भाग से स्पर्श होता रहे तो पाशमुद्रा बन जाती है ।

१५. परशुमुद्रा– दोनों हाथों को एक साथ योजित कर उँगलियों को एक साथ तिरछा कर देने से परशु मुद्रा कही जाती है ।

१६. पद्ममुद्रा–दोनों हाथों को संबद्ध कर उसे मुकुलाकार सीधा

खड़ा कर दें । अब दोनों अँगूठों को उसके अंदर कर लेने से पद्म मुद्रा बन जाती है । कुछ लोग अँगूठे के सभी पर्व न सिकुड़ने के कारण कोणाकृति में भी प्रयोग करते हैं ।

१७.खट्वांगमुद्रा– दाहिने हाथ की सम्पूर्ण उँगलियों को संलग्न कर ऊँचा उठा देने से खट्वांग मुद्रा मानी जाती है ।

१८. कपालमुद्रा– बाएँ हाथ को पात्र की तरह गोलाई में बनाकर उसे बायीं गोद में रखकर ऊपर उठा देने पर कपाल मुद्रा बन जाती है ।

१९. पुस्तकमुद्रा–बायीं मुट्ठी को सामने अपनी ओर कर लेने से पुस्तक मुद्रा हो जाती है ।

२०. ज्ञानमुद्रा– तर्जनी उँगली के साथ अँगूठे का अगला भाग मिला देने पर ज्ञान मुद्रा कही जाती है ।

२१. मुण्डमुद्रा– अँगूठे को भीतर की ओर रखकर बायीं मुट्ठी को बंद कर लें । अब दाहिनी मध्यमा को थोड़ा झुकाकर मध्यमा द्वारा अँगूठे से तर्जनी को योजित कर लें । दायें हाथ को ऐसी स्थिति में रखकर वाम मुष्टि से मिला दें । इस प्रकार मुण्डमुद्रा बन जाती है । इस मुद्रा को दानवराज महिषासुर के मुंड का प्रतीक माना जाता है तथा इसका प्रदर्शन भगवती के दाहिने भाग में करना चाहिए ।

२२. अक्षमाला मुद्रा– पहले तर्जनी के अगले पोर से अँगूठे को मिला लें, पुनः तीनों उँगलियों को भी आपस में आबद्ध कर दें तो अक्षमाला मुद्रा बन जाती है ।

२३. तर्जनीमुद्रा– दायीं तर्जनी को सीधा रखकर सभी उँगलियों को सिकोड़ लेने से तर्जनी मुद्रा कही जाती है ।

२४. वरमुद्रा– दाएँ हाथ को नीचे की ओर झुकाकर फैला देने से वरमुद्रा बनती है ।

२५. अभयमुद्रा– बायीं हथेली सीधी करके ऊपर की ओर उठा देने से ही अभयमुद्रा हो जाती है । कहीं-कहीं इसके भिन्न लक्षण भी कहे गये हैं।

२६. प्रणाममुद्रा– दोनों हाथों को मिलाकर हृदय से स्पर्श कराने पर प्रणाममुद्रा होती है । प्रणाम मुद्रा में अष्टांग प्रणाम (हाथ, पैर, जाँघ, हृदय, शिर, नेत्र, मन तथा वक्षस्थान) करने का नियम कहा है । परन्तु स्त्रियों के लिए पंचांग प्रणाम (भुजा, जानु, शिर, मन एवं बुद्धि) करना ही प्रशस्त माना जाता है ।

२७. संहारमुद्रा– नीचे की ओर झुकाये हुए बाएँ हाथ पर ऊपर उत्थित दायें हाथ को रखकर उँगलियों को एक साथ ग्रथित कर लें। अब उँगलियों के बीच में उँगली मिलाकर पलट देने से संहारमुद्रा होती है। अर्थात् जिस प्रकार पूजा का आरम्भ आवाहनी मुद्रा से होता है उसी प्रकार पूजा की समाप्ति भी संहारमुद्रा से की जाती है। संहारमुद्रा को पूजन की समाप्ति का द्योतक माना जाता है।

किसी भी देवी-देवता के पूजन का उद्देश्य आत्मोन्नति करना ही होता है, परन्तु इसके विपरीत तांत्रिक साधक इन मुद्राओं का प्रयोग षट्कर्मों (शांतिकरण, वशीकरण विद्वेषण, उच्चाटन, स्तम्भन तथा मारण) की सिद्धि के निमित्त भी किया करते हैं।

तांत्रिक साधना में प्रयुक्त होने वाली मुद्राएँ– पद्म, पाश, गदा, मुसल, वज्र तथा खड्ग हैं।

ऊपर लिखित पाँच मुद्राओं का वर्णन पहले किया जा चुका है। अब यहाँ पर वज्रमुद्रा की विधि को देखें।

वज्रमुद्रा– अँगूठे के अगले पर्व से कनिष्ठा को मिलायें और शेष तीनों उँगलियों को सीधी रखें तो वज्रमुद्रा कही जाती है। इसे ही कुलिश मुद्रा भी कहा जाता है।

तांत्रिक हवन-विधि– तंत्र -साधना के अन्तर्गत पाँच प्रकार की मुद्राएँ व्यवहृत की जाती हैं जिन्हें मयूरी, कुक्कुटी, हंसी, मृगी तथा शूकरी नाम से संबोधित किया जाता है। इन सभी मुद्राओं की विधियाँ क्रमशः नीचे उल्लिखित की जा रही हैं।

१. मयूरीमुद्रा– हाथ को टेढ़ा रखकर, ऊपर से थोड़ा घुमाते हुए बिना तर्जनी का सहारा लिये जो हवन किया जाता है उसे मयूरी के नाम से जाना जाता है। इस मुद्रा में हवन करते समय नारियल, केला, सफेद कुम्हड़ा तथा फलमूल के साथ साधक को हवन करना चाहिए।

२. कुक्कुटीमुद्रा– पाँचों उँगलियों को मिलाकर सीधी हथेली से जो हवन किया जाता है उसे ही कुक्कुटी मुद्रा कहते हैं। इस मुद्रा का प्रयोग साधकगण प्रायः मारणकर्म में किया करते हैं।

३. हंसीमुद्रा– कनिष्ठा उँगली को पृथक् रखकर चार उँगलियों से किया जाने वाला होम हंसीमुद्रा है।

४. मृगीमुद्रा– तर्जनी तथा अँगूठे को पृथक् रखकर केवल तीन उँगलियों के सहारे किया जाने वाला होम मृगीमुद्रा कहलाता है। सम्पूर्ण

मांगलिक कार्यों तथा शांतिकरण के निमित्त हंसी तथा मृगी, दोनों का ही व्यवहार करना उचित कहा गया है ।

५. शूकरीमुद्रा– पाँचों उँगलियों को एकत्रित कर उसे पुष्पकली के समान बनाकर किये जाने वाले होम को शूकरी मुद्रा कहते हैं । वशीकरण, उच्चाटन तथा विद्वेषण आदि कर्मों के लिए इसी मुद्रा से हवन करने का विधान है ।

श्रीचक्र एवं त्रिपुरसुन्दरी पूजन में व्यवहृत होने वाली मुद्राएँ

दश महाविद्या (काली, तारा, षोडशी, भुवनेश्वरी, त्रिपुरभैरवी, छिन्नमस्ता, धूमावती, बगलामुखी, मातंगी, कमलात्मिका (लक्ष्मी) के अन्तर्गत जगदम्बा, त्रिपुरभैरवी मुख्य रूप से उपास्या मानी गयी हैं । पूर्व काल में अनेक महर्षिगण इस विद्या की साधना परम आस्था एवं निष्ठापूर्वक किया करते थे । फलस्वरूप उन्हें अलौकिक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती थीं । उनमें चमत्कारी सिद्धियों की प्राप्ति होने का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उन्हें उपासना की सम्पूर्ण विधियों का पूर्ण रूप से ज्ञान होता था । परन्तु आधुनिक युग में साधक को पूर्णरूपेण सिद्धि उपलब्ध नहीं होती तो वे अपनी अज्ञानता को स्वीकार न करके शास्त्रों पर मिथ्या दोषारोपण करने से भी नहीं चूकते। यही कारण है कि साधक फलप्राप्ति से वंचित रह जाते हैं । आज भी दक्षिण भारत के प्रान्तों में त्रिपुरभैरवी के उपासकों की बहुलता देखी जा सकती है। श्रीविद्या के आराधकों को मुद्रा प्रदर्शन का यथार्थ ज्ञान नहीं रहने के कारण ही उनकी पूजा फलवती सिद्ध नहीं होती ।

श्रीयन्त्र के नव चक्रों पर नव आवरणदेवता के पूजन-काल में नव मुद्राएँ निर्दिष्ट की गयी हैं जिनका प्रयोग करना अति आवश्यक होता है। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्तिस्वरूपा तथा वामा, ज्येष्ठा, रौद्रीस्वरूपा देवी का समाविष्ट रूप ही दशवीं त्रिखंडा मुद्रा के नाम से अभिहित है ।

इस मुद्रा के लिए दोनों हाथों को पलटकर उन्हें परस्पर समायोजित करें, अँगूठों को सीधा रखकर दोनों तर्जनी उँगलियों को मोड़कर उनके द्वारा दोनों अनामिकाओं को पकड़कर कनिष्ठा से मिला लें । दोनों हाथों की उँगलियों के एक साथ ग्रथित होने के परिणामस्वरूप इसमें तीन खंडों का विभाजन हो जाता है एतदर्थ इसे त्रिखंडा मुद्रा के नाम से जाना जाता है ।

इस मुद्रा का प्रयोग आवाहन तथा सन्निधिकरण अर्थात् देवता को सन्निकट लाने के उद्देश्य से किया जाता है। इस मुद्रा के सम्बन्ध में एक अन्य प्रकार का वर्णन भी मिलता है जिसके अनुसार दोनों हाथ की उँगलियों को आपस में मिलाकर दायीं तर्जनी से बायीं अनामिका और बायीं तर्जनी से दाहिनी अनामिका को पकड़ रखें। पुनः दोनों कनिष्ठाओं, दोनों मध्यमाओं तथा दोनों अँगूठों को एक साथ सटाकर सीधी कर लें।

सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा– ऊपर कथित त्रिखंडा मुद्रा के तीनों खंडों को अलग-अलग कर देने पर वही सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा का रूप ले लेती है। इसके लिए मध्यमा को मध्यमा के साथ, अनामिका को अनामिका के साथ तथा कनिष्ठा को कनिष्ठा के साथ संयुक्त कर तर्जनी उँगली को सीधा रखने का नियम है। इस नियम के अनुसार तीन उँगलियों के संयोजन से तीन त्रिभुज का रूप बन जाता है। तंत्रशास्त्र के मतानुसार इसे तीन योनि भी कहते हैं। इस प्रकार की मुद्रा में वामा शक्ति की प्रमुखता रहती है क्योंकि वामा शक्ति के द्वारा ही सृष्टि की रचना सम्भव होती है। मण्डल के पूजन में यही मुद्रा सर्वप्रथम प्रदर्शित की जाती है अतः इसे प्रथमा मुद्रा के नाम से भी संबोधित किया जाता है जो सर्वथा उचित है।

द्राविणी मुद्रा– श्रीयन्त्र के पूजनार्थ षोडशदल कमल का निर्माण किया जाता है तथा इसमें द्राविणी मुद्रा का प्रदर्शन किया जाता है। इस चक्र के पूजन से मानव की सम्पूर्ण अभिलाषाएँ पूर्ण होती हैं। किसी की दयनीय अवस्था को देखकर हृदय का द्रवित होना ही उसके प्रति अनुग्रह का कारण बनता है। अतः इस मुद्रा के द्वारा देवी की कृपा प्राप्त होती है। इस मुद्रा प्रदर्शन के लिए मध्यमा और तर्जनी उँगली को सीधा रखना पड़ता है। अब इसे ही कुछ टेढ़ा संकुचित रखने से यही आकर्षिणी मुद्रा भी हो जाती है। इस मुद्रा में सृष्टि-रचना से सम्बन्धित वामा शक्ति की प्रमुखता रहती है।

सर्ववशंकरी मुद्रा– दोनों हाथों को दोने के समान बनाकर दोनो तर्जनियों को किंचित् टेढ़ा कर लें। अब उनके मध्यवर्ती भाग में दोनों मध्यमाओं को संयुक्त करें। इसी प्रकार अनामिका और कनिष्ठिका को भी संकुचित कर मिला लें, पुनः सभी को एक साथ एकत्रित कर लगायें। दोनों अँगूठों को समाविष्ट कर ऊपर की ओर रखें। चतुर्दशार चक्र के पूजन में इस सौभाग्यदायक मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए। इस मुद्रा के द्वारा हृदय में ध्यान धारण करने से शिव का आवेश होता है। अतः शक्ति-जागरण के निमित्त यह मुद्रा आवश्यक कही गयी है।

उन्मादिनीमुद्रा– आध्यात्मिक क्षेत्र में, उन्मादन का अभिप्राय किसी व्यक्ति को सांसारिक व्यवहारों से विमुख करके शिवशक्ति की समरसता का उसे शोधकर्ता बनाने से होता है । इस प्रकार शिवशक्ति की समरसता की अनुभूति का होना कुंडलिनी (योगशास्त्रानुसार एक शरीरस्थ नाड़ी) की जागृति से ही सम्भव हो सकता है । इसमें दोनों हाथों को सामने रखकर दायीं कनिष्ठा को बायीं मध्यमा से तथा बायीं कनिष्ठा को दायीं मध्यमा से पकड़ लेना चाहिए । अब दोनों अनामिकाओं को मिलाकर सीधा कर लें । पुनः उनके बाह्य भाग पर दोनों तर्जनियाँ संयोजित कर दें । दोनों अँगूठों को दण्ड के समान एक सीध में रखते हुए उन्हें मध्यमा के नाखून के अगले भाग से लगा लें तो उन्मादिनी मुद्रा कही जाती है । इसके दो भेद बतलाये गये हैं। एक में अनामिका उँगली कनिष्ठा से नीचे रखी जाती है और दूसरे में कनिष्ठा से ऊपर अनामिका रहती है । इन दोनों में से किसी भी एक प्रकार को अपनी सुविधा के अनुसार व्यवहृत किया जा सकता है । बहिर्दशार चक्र-पूजन में यह मुद्रा प्रयुक्त होती है ।

महांकुश मुद्रा– इस मुद्रा प्रदर्शन के भी कई भेद हैं । पहले प्रकार में दाहिने हाथ की मुट्ठी बंदकर तर्जनी को बाहर निकालकर नीचे की ओर कुछ टेढ़ा करने से यह अंकुश मुद्रा बन जाती है, परन्तु दूसरे प्रकार में मध्यमा को सीधी रखकर उसके निकट के बीच वाले भाग में तर्जनी को टेढ़ी करके लगाने से भी अंकुश मुद्रा कही जाती है । साधारणतया दश महाविद्या की उपासना के अंतर्गत इन्हीं दो मुद्राओं का प्रदर्शन देखने में आता है । तांत्रिक साधक आकर्षण कर्म के निमित्त प्रायः इन्हीं मुद्राओं का प्रयोग किया करते हैं। दोनों हाथों को परस्पर ग्रथित कर लेने से महांकुश मुद्रा बन जाती है जिसे श्रीचक्रपूजन में उपयोगी माना जाता है ।

खेचरीमुद्रा– शक्ति-पूजन हेतु खेचरी मुद्रा का प्रयोग प्रायः दो प्रकार से किया जाता है । पहले प्रकार का विधान यह है कि दोनों भुजाओं को इस तरह पलट कर रखें कि दाहिनी भुजा की कलाई पर बायीं भुजा की कलाई आ जाय । अब दायीं तर्जनी से बायीं अनामिका तथा कनिष्ठा को पकड़ लेवें, पुनः बायीं तर्जनी से दायीं अनामिका और कनिष्ठा को पकड़ रखें । दोनों मध्यमाओं को मिलित कर देने से बीच में एक त्रिकोण-सा आकार बन जाता है । तत्पश्चात् दोनों अँगूठों को ऊपर से सटा दें तो खेचरी मुद्रा हो जाती है ।

दूसरे प्रकार में दोनों मध्यमाओं को थोड़ा वक्राकार करते हुए शि से स्पर्श करायें। इसमें कुछ लोग दाहिनी कलाई को ऊपर की ओर होना भी आवश्यक बताते हैं। यही मुद्रा सर्वमान्य होती है। इसके विपरीत योगसाधन में इस मुद्रा का समन्वय तालु के ऊपरी भाग से रहता है। इसकी साधना में जिह्वा को तालुमूल में लगा लिया जाता है। परन्तु शक्तिपूजन के निमित्त इस विधि को नहीं अपनाया जाता। शक्तिपूजन की ऊपर कथित दूसरे प्रकार की मुद्रा में देवी त्रिपुरसुन्दरी का अवस्थान माना जाता है।

बीजमुद्रा– इस मुद्रा के भी विभिन्न प्रकार कहे गये हैं। इसका एक प्रकार तो यह बतलाया गया है कि अँगूठे और तर्जनी को आकुंचित कर उसे अर्ध गोलाकार बना लें। इस प्रकार से वह अर्धचन्द्र के समान प्रतीत होने लगता है। अब इस प्रकार दोनों हाथों को अर्धचन्द्राकार रूप में परिवर्तित कर तर्जनी के साथ तर्जनी और अँगूठा के साथ अंगूठा संयुक्त कर लें। चारों के अगले भाग भी मिले रहने चाहिए। कनिष्ठा को अनामिका के नीचे से निकालकर मध्यमा उँगली से मिला दें। परन्तु ध्यान रहे कि दोनों मध्यमाओं के नखाग्र भी परस्पर मिले रहने चाहिए। सबसे नीचे दोनों अनामिकाओं को आकुंचन की स्थिति में रखे तो इसे बीजमुद्रा कहा जाता है। किसी-किसी के मत से मध्यमा को कनिष्ठा के ऊपर रखें, अनामिका के द्वारा तर्जनी तथा मध्यमा को गूँथ ले और अँगूठे को अर्धचन्द्राकार की अवस्था में रखें तो भी बीजमुद्रा कहा जाता है। यह बीजमुद्रा देवी स्वरूप का ही प्रतीक है। सर्वसिद्धिचक्र के पूजन-काल में इस मुद्रा का प्रदर्शन विहित माना जाता है।

योनिमुद्रा– यह मुद्रा योन्याकार होने के कारण ही योनिमुद्रा के नाम से विख्यात है। बिन्दुचक्र की पूजनावस्था में इस मुद्रा का प्रदर्शन परमावश्यक माना जाता है। इसमें दोनों तर्जनियों को टेढ़ा रखकर उन पर मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा को रखा जाता है। सबको एक साथ मिलाकर उनके अग्रिम भाग को अँगूठों के द्वारा दबाने से योनिमुद्रा बन जाती है। किसी-किसी के मतानुसार तर्जनी के ऊपर मध्यमा, मध्यमा पर अनामिका तथा उसके ऊपर कनिष्ठा को स्थापित कर सभी को एक साथ अँगूठों से दबाने पर यह योनिमुद्रा का रूप ले लेती है। सृष्टि क्रमानुसार शक्ति-पूजन में योनिमुद्रा का प्रथम स्थान कहा जाता है और संहार-क्रम में सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा का। जिस स्थान में सम्पूर्ण रूप से चक्रपूजा की जाती है वहाँ मण्डल की तीसरी रेखा पर चार दिशाएँ, चार विदिशाएँ तथा ऊपर

और नीचे की ओर दशों मुद्राएँ प्रदर्शित की जाती हैं। चक्र-पूजन में इसे महामुद्रा के नाम से जाना जाता है। इसके लिए दोनों हाथों की सभी उँगलियों को आपस में ग्रथित कर लें। पुन: उनमें से अँगूठों को एक सीध में रखकर मिला दें। तदनन्तर दोनों मध्यमाओं को भी उनके साथ सीधा रखकर मिला देने पर महामुद्रा हो जाती है।

मातृकान्यास में व्यवहृत होने वाली मुद्राएँ

मंत्र के वर्ण-समूहों को मातृका नाम दिया जाता है। इन्हीं वर्ण-समूहों के द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों का स्पर्श किया जाता है। किन-किन अंगों का स्पर्श किस मंत्रवर्ण से किया जाय इसका उल्लेख नीचे लिखे प्रकार से है।

अनामिका और मध्यमा के द्वारा 'नम: मस्तके' बोलते समय मस्तक का स्पर्श करें।

अँगूठे और अनामिका से दाहिनी आँख का स्पर्श 'नम: दक्षिण नेत्रे' कहकर किया जाता है।

इसी प्रकार 'नम: वाम नेत्रे' कहते हुए बायीं आँख का स्पर्शन करें।

हथेली की उँगलियों की संधि से 'नम: ऊर्ध्वोष्ठे अधरोष्ठे' कहते समय नीचे-ऊपर के दोनों होंठों का स्पर्श करना चाहिए।

'दक्षिण कर्णे एवं वामकर्णे' के उच्चारण-काल में अँगूठे के द्वारा दाहिने तथा बाएँ कान का स्पर्श करें।

कनिष्ठा और अँगूठे को मिलाकर 'दक्षिण नासापुटे' तथा 'वाम नासापुटे' कहकर दाएँ तथा बाएँ नासारन्ध्रों को छूना चाहिए।

तर्जनी, अनामिका और मध्यमा के साथ 'नम: मुखे' बोलकर मुख का स्पर्शन करें। इसी भाँति दोनों कपोलों का भी स्पर्श करें। अनामिका के द्वारा दन्तावलियों तथा कनिष्ठा और अनामिका से पृष्ठभाग का स्पर्श किया जाता है। दक्षिण हाथ की चारों उँगलियों से 'नम: नाभौ' कहते हुए नाभिप्रदेश का स्पर्श किया जाता है। स्पर्शन काल में तर्जनी उँगली को पृथक् रखना चाहिए। हृत्प्रदेश का स्पर्श करतल से करना चाहिए।

पूजन-काल की मुद्राएँ

ब्रह्मास्त्र के व्यवहार– काल में मंत्रजाप तथा पूजन-काल में निम्नलिखित

पाँच मुद्राएँ दिखायी जाती हैं, जैसे– ब्राह्मी, मुद्गर, पाश, वज्र तथा जिह्वा।

ब्राह्मीमुद्रा– बाएँ हाथ के अंगुष्ठ को नीचा रखकर उसे बाकी चारों उँगलियों से दबाने पर ब्राह्मी मुद्रा होती है । यही एक ऐसी मुद्रा है जिसकी सिद्धि मिल जाने पर सद्य: प्रभाव देखने में आता है । मुद्गर तथा पाशमुद्रा का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है ।

वज्रमुद्रा– अँगूठे के अग्रिम भाग से कनिष्ठा को लगाकर शेष तीनों उँगलियाँ सीधी रखने से वज्रमुद्रा बन जाती है ।

लोकपाल मुद्रा– हस्तमूल को मिलित तथा सम्पूर्ण उँगलियों को विस्तृत रखने से लोकपाल मुद्रा बनती है । इस मुद्रा का प्रदर्शन लोकपालों की पूजा में किया जाता है ।

वह्निप्राकार मुद्रा– पहले दोनों हाथों से अंकुश मुद्रा निर्मित कर उसे उलटा घुमाने से यह मुद्रा बनती है । इसे ही अस्त्रमुद्रा का नाम भी दिया जाता है ।

गालिनी मुद्रा– बाएँ अँगूठे को दायीं कनिष्ठा से मिला लें । पुन: बायीं कनिष्ठा दाहिने अँगूठे के साथ संयोजन करें । ऐसी स्थिति में तर्जनी, मध्यमा तथा अनामा—इन तीनों उँगलियों का परस्पर मिला रहना आवश्यक होता है । इस मुद्रा का प्रयोग शंख में जल भरकर ऊपर से घुमाते समय किया जाता है ।

रिपुजिह्वाग्रहा मुद्रा– चारों उँगलियों से मुट्ठी बंदकर उस पर तर्जनी को अँगूठे से दबा रखने पर यह मुद्रा बनती है । प्राय: इस मुद्रा का प्रयोग बगलामुखी (पीताम्बरा) पूजन के समय किया जाता है ।

सप्तजिह्वा मुद्रा– कलाई पर हाथ रखकर उँगलियों को विस्तीर्ण करें। अब कनिष्ठा उँगली को अँगूठे से मिला दें तो यह मुद्रा बन जाती है। प्राय: हवन-काल में अग्नि के लिए प्रियकारक इस मुद्रा का प्रदर्शन किया जाता है । इसे ही वैश्वानर (अग्नि) मुद्रा भी कहा जाता है ।

तर्जनी मुद्रा– इसके लिए बायीं मुट्ठी बंद कर तर्जनी और मध्यमा को विस्तृत कर देने पर तर्जनी मुद्रा बन जाती है । इसका एक दूसरा रूप यह है कि दायीं मुट्ठी बंद कर उसकी तर्जनी को सामने की ओर सीधा फैलाये। तंत्रानुसार इस मुद्रा का उपयोग अनिष्टकारी कर्मों के लिए किया जाता है ।

प्रार्थना मुद्रा– दोनों हाथों की सम्पूर्ण उँगलियों को विस्तृत कर उन हाथों को मिलाकर हृदय से स्पर्श कराने पर प्रार्थना मुद्रा कही जाती है ।

अंजलि मुद्रा– दोनों हाथों की अंजलि बनाने से होती है ।

विस्मय मुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी बंदकर तर्जनी उँगली को बाहर निकाल लें और उसे नासिका से लगायें तो विस्मय मुद्रा कही जाती है । इसका प्रदर्शन देवी-ध्यान के समय करना पड़ता है ।

कालकर्णी मुद्रा– दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बंद कर उनके अँगूठे को ऊपर उठा लें । तत्पश्चात् उन्हें मिलाकर अपने सामने कर लें तो कालकर्णी मुद्रा कही जाती है । अपने ऊपर शत्रु के द्वारा किये गये अनिष्टकारक प्रयोगों को शांत करने के लिए इस मुद्रा का उपयोग किया जाता है ।

मंत्र के ऋषि, छंद और उनके देवता के नाम को बोलते हुए 'ऋषिच्छन्दो देवतानां न्यासः' कहने का नियम पाया जाता है । दाहिने हाथ के अँगूठे को पृथक् कर शेष चारों उँगलियों से 'ऋषये नमः शिरसि' कहकर शिर का स्पर्श किया जाता है । मंत्र छन्द का नाम लेकर 'छन्दसे नमः मुखे' बोलकर मुखमण्डल का स्पर्श करना चाहिए । मंत्र के देवता का उच्चारण करते हुए 'देवतायै नमः हृदये' कहकर चतुष्टय उँगलियों से हृत्प्रदेश का स्पर्श किया जाता है । इस प्रकार मंत्र के ऋषि, छन्द और देवता की मुद्रा मानी जाती है ।

बहिर्मातृका-न्यास में आवश्यक मुद्राएँ

ॐ अं नमः शिरसि– मध्यमा और अनामिका को मिलाकर भाल का स्पर्श करें ।

ॐ आं नमः मुखवृत्ते– तर्जनी, मध्यमा और अनामिका मिलाकर मुख पर हाथ फेरें ।

ॐ इं नमः दक्षनेत्रे– अंगूठा और अनामिका को दाहिने नेत्र से लगायें ।

ॐ ईं नमः वामनेत्रे– बायें अँगूठे और अनामिका को बाईं आँख से लगायें ।

ॐ उं नमः दक्षकर्णे– दाहिने हाथ के अँगूठे से दाहिने कान का स्पर्श करें ।

ॐ ऊं नमः वामकर्णे– बायें हाथ के अंगूठे से बायें कान को छूएँ।

ॐ ऋं नमः दक्षनासापुटे– दाहिने हाथ के अँगूठे और कनिष्ठा से दाहिने नासारन्ध्रों को छुएँ ।

ॐ ॠं नमः वाम नासापुटे– बायें हाथ के अँगूठे और कनिष्ठा से बायें नथुने का स्पर्श करें ।

ॐ ऌं नमः दक्ष कपोले -दाहिने हाथ की तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से दाहिने गाल का स्पर्श करें ।

ॐ ॡं नमः वामकपोले– बाईं तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से वाम कपोल का स्पर्श करें ।

ॐ एं नमः ऊर्ध्वोष्ठे– ऊपर के होंठ का अंगूठे से स्पर्श करें ।

ॐ ऐं नमः अधरोष्ठे– अंगूठे से नीचे के होंठ का स्पर्श करें ।

ॐ ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ– अनामा से ऊपर की दंतावलि का स्पर्श करें ।

ॐ औं नमः अधोदंतपंक्तौ– अनामिका से नीचे की दंतावलि का स्पर्श करें ।

ॐ अं नमः जिह्वाग्रे– मध्यमा से जिह्वा के अगले भाग का स्पर्श करें। जिह्वाग्रे के स्थान पर किसी-किसी के मत से ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श करते हैं ।

ॐ कं नमः दक्ष बाहुमूले– बांये हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से दाहिनी कांख का स्पर्श करें ।

ॐ खं नमः दक्षकूर्परे– बायें हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से दाहिनी कोहनी को छूएँ ।

ॐ गं नमः दक्षमणिबंधे– हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से दाहिनी कलाई का स्पर्श करें ।

ॐ घं नमः दक्षकरांगुलिमूले– पूर्ववत् उँगलियों से दाहिनी हथेली को छुएँ ।

ॐ ङं नमः दक्षकरांगुल्यग्रे– पहले की भाँति दाहिनी उँगलियों से अग्रभाग को छूएँ ।

ॐ चं नमः वामबाहुमूले– दाहिने हाथ की मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा को बायीं कुक्षि में लगायें ।

ॐ छं नमः वामकूर्परे– दाहिनी मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा को बाईं कोहिनी से लगायें ।

ॐ जं नमः वाममणिबन्धे– दाहिनी मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से बाईं कलाई को छूएँ ।

ॐ झं नमः वामकरांगुलिमूले– दाहिनी मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से बाईं हथेली का स्पर्श करें ।

ॐ ञं नमः वामाकरांगुल्यग्रे– दाहिनी मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से दाईं उँगलियों के अगले भाग को छूएँ ।

ॐ टं नमः दक्षोरुमूले– दाहिने हाथ की उन्हीं तीनों उँगलियों से जांघ के मूल का स्पर्श करें ।

ॐ ठं नमः दक्षजानुनि – इसी प्रकार दाहिनी जांघ का स्पर्श करें।

ॐ डं नमः दक्षगुल्फे – इसी प्रकार टखने का स्पर्श करें ।

ॐ ढं नमः दक्ष पादांगुलिमूले– इसी प्रकार दाहिने पैर की उंगलियों की जोड़ों का स्पर्श करें ।

ॐ णं नमः दक्षपादांगुल्यग्रे– मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से दाहिने पैर की उंगलियों के अग्रिम भाग का स्पर्श करें ।

ॐ तं नमः वामोरुमूले– उक्त तीनों उंगलियों से बायीं जांघ की संधि का स्पर्श करें ।

ॐ थं नमः वामजानुनि– इसी प्रकार वाम जंघा का स्पर्श करें ।

ॐ दं नमः वामगुल्फे– इसी प्रकार बायें टखने को छुएँ ।

ॐ धं नमः वामपादांगुलिमूले– इसी प्रकार बायें पैर की उंगलियों के मूल का स्पर्श करें ।

ॐ नं नमः वामपादांगुल्यग्रे– इसी प्रकार बायें पैर की उंगलियों के सिरों का स्पर्श करें ।

ॐ पं नमः दक्षपार्श्वे - मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से दाहिनी बगल का स्पर्श करें ।

ॐ फं नमः वामपार्श्वे– दाहिनी मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से बाईं बगल का स्पर्श करें ।

ॐ बं नमः पृष्ठे– इसी प्रकार पीठ का स्पर्श करें ।

ॐ भं नमः नाभौ– अंगूठा, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा से नाभि-प्रदेश का स्पर्श करें ।

ॐ मं नमः जठरे– पाँचों उंगलियों से उदर का स्पर्श करें ।

ॐ यं नमः हृदये– हथेली से हृदय का स्पर्श करें ।

ॐ रं नमः दक्षस्कन्धे– हथेली से दाहिने कंधे को छूएँ ।

ॐ लं नमः गलपृष्ठे– इसी प्रकार गले के ऊपरी पिछले भाग को हथेली से स्पर्श करें ।

ॐ वं नमः वामस्कन्धे– हथेली से बायें कंधे का स्पर्श करें ।

ॐ शं नमः हृदयादिदक्षकरांगुल्यन्तम् – बाईं हथेली के द्वारा हृदय से लेकर दाहिने हाथ की उंगलियों के सिरों तक छूये । इसी प्रकार दाहिनी हथेली से हृदय से लेकर बायें हाथ की उंगलियों के सिरों तक छूएँ ।

ॐ षं नमः हृदयादिवामकरांगुल्यन्तम् – इसी प्रकार दाहिनी हथेली से हृदय से लेकर बायें हाथ की उंगलियों के सिराओं पर्यन्त छूएँ ।

ॐ सं नमः हृदयादिदक्षपादांगुल्यन्तम् – हृदय से लेकर दाहिने पैर की उंगलियों के अग्रभाग तक हथेली से स्पर्श करें ।

ॐ हं नमः हृदयादिवामपादांगुल्यन्तम् – हृदय से लेकर बायें पैर की अंगुलियों के अगले भाग तक हथेली द्वारा स्पर्श करें ।

ॐ ळं नमः कट्यादिपादांगुल्यन्तम् – कमर से पैर की उंगलियों तक हथेली से ले जाएँ ।

ॐ क्षं नमः कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम् – कमर से ब्रह्मरन्ध तक हथेली को ले जायें ।

जब 'लं नमः हृदयादिगुह्यान्तम्' और 'क्षं नमः हृदयादिमूर्धान्तम्' कहा जाय तब हृदय से पेट के नीचे तक और हृदय से मूर्धा तक हथेली से स्पर्श करना चाहिए । व्यापक न्यास में किसी अंग का स्पर्श किये बिना ही हाथ को ऊपर से नीचे तक किया जाता है । यदि न्यास में इस प्रकार वर्णित विधि से स्पर्श न कर सके तो अंगूठे और अनामिका से उन -उन अंगों का स्पर्श किया जा सकता है ।

जीव-न्यास के निमित्त छह मुद्राएँ

जीव-न्यास के लिए निम्नलिखित छह मुद्राओं के प्रदर्शन का विधान कहा गया है जो इस प्रकार से हैं— बीज, लेलिहाना, त्रिखण्डा, नाद, बिन्दु तथा सौभाग्यदंडिनी ।

१. बीजमुद्रा– दोनों हाथों को अर्धचन्द्राकार बनाकर दोनों तर्जनियों तथा दोनों अँगूठों को परस्पर सम्मिलित कर लें । अब उनके नीचे मध्यमा के साथ कनिष्ठा मिला लें और उन सबके नीचे अनामिका को मिला दें तो समस्त सिद्धिप्रदायिनी बीजमुद्रा हो जाती है ।

२. लेलिहाना मुद्रा– इसमें तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका उँगली को नीचे की ओर करके अँगूठे को अनामिका के साथ संलग्न करके उसे सीधा रखा जाता है । इस प्रकार लेलिहाना मुद्रा बन जाती है ।

३. त्रिखंडा मुद्रा– दोनों हाथों को नीचे-ऊपर करके मिला लें तथा अंगूठे को सीधा रखे । पुनः दोनों तर्जनियों को तिर्यक् करके अनामिकाओं को पकड़कर कनिष्ठा के साथ समायोजित कर लें तो ध्यान के लिए उपयोगी त्रिखंडा मुद्रा हो जाती है ।

४. नाद मुद्रा– दाहिने हाथ की मुट्ठी बंद कर उसके अँगूठे को खड़ा कर दें तो नाद मुद्रा कही जाती है ।

५. बिन्दु मुद्रा– दाहिनी तर्जनी तथा अँगूठे को परस्पर मिला देने से बिन्दु मुद्रा कही जाती है ।

६. सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा– बाएँ हाथ की मुट्ठी बन्द कर तर्जनी को सीधी करके कान के निकट वृत्ताकार रूप में घुमाने से सौभाग्यदंडिनी मुद्रा बनती है

शक्तिपूजन के निमित्त प्रयोग की जाने वाली दश मुद्राएँ इस प्रकार से वर्णित हैं— पाश, अंकुश, वर, अभय, खड्ग, चर्म, धनुष, बाण, मुसल तथा दुर्गा मुद्रा ।

पूर्वकथित शक्तिपूजन के अन्तर्गत नव प्रकार की मुद्राओं का कथन किया जा चुका है । यहाँ केवल दुर्गा मुद्रा की विधि बतलायी जा रही है ।

दुर्गा मुद्रा– दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बंद कर बायीं मुट्ठी पर दायी मुट्ठी स्थापित कर उसे शिर से स्पर्श कराये तो दुर्गा मुद्रा बन जाती है । इसे ही दौर्गी मुद्रा भी कहा जाता है ।

दश महाविद्या के अन्तर्गत तारापूजन हेतु पंच मुद्राएँ

ये मुद्राएँ इस प्रकार से कही गयी हैं— योनिमुद्रा, भूतिनी मुद्रा, बीजमुद्रा, दैत्यधूमिनी मुद्रा तथा लेलिहाना मुद्रा ।

त्रिपुरसुंदरी प्रकरण में योनिमुद्रा तथा बीजमुद्रा का उल्लेख किया जा चुका है । इसी प्रकार जीव-न्यास के अन्तर्गत लेलिहाना मुद्रा के लक्षण भी दिये गये हैं । यहाँ शेष दो मुद्राओं के लक्षण दिये जा रहे हैं ।

भूतिनी मुद्रा– पहले योनिमुद्रा बनाकर उसे नीचे की ओर झुकाये और अँगूठे को उसके सामने रखें । यही भूतिनी मुद्रा है ।

दैत्यधूमिनी मुद्रा– हाथों को पलट कर मध्यमा को कनिष्ठा के साथ दबाये । अनामिका को झुकाकर उसके नीचे रखते हुए अँगूठे के मूल पर्व से स्पर्श करायें । अब तर्जनी को सीधी रखकर आपस में मिला देने पर

दैत्यधूमिनी मुद्रा बन जाती है । यह मुद्रा बंधन से छुटकारा दिलाने वाली कही गयी है ।

महाकाली पूजन की तीन मुद्राएँ इस प्रकार हैं— महायोनि, मुण्ड तथा भूतिनी मुद्रा । इन तीनों का वर्णन किया जा चुका है ।

महालक्ष्मी मुद्रा का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है । इसे ही पंकजा मुद्रा भी कहते हैं ।

महासरस्वती की अक्षमाला, वीणा, व्याख्यान तथा पुस्तक मुद्रा के लक्षण भी आ चुके हैं ।

भुवनेश्वरी की अष्ट मुद्राओं का वर्णन भी पूर्व में आ चुका है जो इस प्रकार से है— पाश, अंकुश, वर, अभय, पुस्तक, ज्ञान, बीज एवं योनि ।

मुद्रा प्रयोग -विधान एवं कुछ अन्य मुद्राओं के लक्षण

प्रयोग के आधार पर मंत्रों का विभाजन छह भागों में किया गया हैं जिन्हें षट्कर्म के नाम से सम्बोधित किया जाता है । इन षट्कर्मों के नाम क्रमश: शांतिकरण, वशीकरण, विद्वेषण, स्तम्भन, उच्चाटन तथा मारण हैं। इनके प्रयोगों के लिए अलग-अलग प्रकार की मुद्रा भी निर्दिष्ट है । शांतिकरण एवं पुष्टिकरण के निमित्त पद्ममुद्रा निर्धारित है । वशीकरण के लिए पाशमुद्रा का प्रयोग किया जाता है क्योंकि पाश का अर्थ फंदा होता है । जिस प्रकार पाश का प्रक्षेपण कर किसी को बाँध लिया जाता है उसी प्रकार इस पाशमुद्रा के द्वारा किसी दूरवर्ती प्राणी को बाँधकर अपने अधीन कर लिया जाता है । स्तम्भन के लिए गदामुद्रा का प्रयोग किये जाने पर विपक्षी की गति का अवरोधन होता है । विद्वेषण कर्म में मुसल मुद्रा का प्रयोग उपयोगी माना गया है । किन्हीं दो व्यक्तियों में पारस्परिक मतभेद पैदा कर देना ही इस मुद्रा का उद्देश्य है । प्राचीन काल में इनके प्रयोगों का प्रचलन अत्यधिक था । उच्चाटन के लिए वज्रमुद्रा का प्रयोग निर्धारित किया गया है । इस क्रिया के द्वारा मन स्थिर नहीं रहता, उसका मन उद्वेलित तथा डावाँडोल हो उठता है । मारण कर्म करना शास्त्रों में निषिद्ध बतलाया गया है । इसमें खड्गमुद्रा का प्रयोग होता है । इस क्रूरकर्म को केवल आत्मरक्षार्थ ही प्रयोग करना चाहिए अन्यथा साधक की हानि सुनिश्चित रहती है । हवन-काल में केवल मृगी मुद्रा का ही उपयोग किया जाना चाहिए ।

नाराच मुद्रा– इसमें दोनों मध्यमाओं से केवल अँगूठों का स्पर्श कराये और शेष उँगलियों को पृथक् रखें तो नाराच मुद्रा बनती है । इस मुद्रा में तर्जनी को ऊपर की ओर करके चतुर्दिक् दिग्बन्धन किया जाता है । पूर्वकाल में बाण-वृष्टि के द्वारा अपने शत्रुदल को चारों ओर से आच्छादित कर दिया जाता था, ठीक उसी प्रकार इस मुद्रा-प्रदर्शन का भी अभिप्राय होता है । अर्थात् उपासना-काल में अपनी सुरक्षा की दृष्टि से इसके द्वारा सभी दिशाओं में एक अवरोध-सा खड़ा कर दिया जाता है ताकि पूजास्थल तक किसी अमंगलकारी आत्मा का प्रवेश न हो सके । इस मुद्रा के पश्चात् दिग्बंधन के लिए अग्निप्राकार मुद्रा के प्रयोग का भी नियम है । इसके लिए दोनों हाथों से त्रिशूल की मुद्रा बनाकर उन्हें चारों ओर विपरीत दिशा में घुमाते रहें । ऐसा करने के फलस्वरूप अपने चारों ओर अग्नि की एक चहार-दीवारी-सी बन जाती है और उपासक पूर्णरूप से सुरक्षित हो जाता है । इस मुद्रा के प्रयोग से आराधक सर्पदंश एवं वज्रपात के भय से भी रहित हो जाता है ।

भगवान नृसिंहदेव के पूजनार्थ नारसिंही मुद्रा के प्रदर्शन का विधान है । इसके लिए बाएँ अँगूठे से बायीं कनिष्ठा को दबाकर शेष बची हुई तीनों उँगलियों को त्रिशूलवत् ऊपर की ओर उत्थित करने से नारसिंही मुद्रा बनती है । इसकी दूसरी विधि के अनुसार दोनों कनिष्ठाओं को दोनों अँगूठों से दाबकर शेष उँगलियों को आपस में एक-दूसरे से मिला ले और उन्हें अधोमुख कर दें तो भी यह मुद्रा बन जाती है । इसके अतिरिक्त दारणादि मुद्राओं को प्रदर्शित करने का भी नियम बतलाया गया है ।

दारणमुद्रा– दोनों अँगूठों को सीधा रखकर बाकी उँगलियों को भी आपस में संयुक्त कर लें । पुनः उन्हें सीधा रखते हुए किंचित् अधोमुख कर दें ।

पञ्चमुख मुद्रा– कलाई के सहित दोनों हाथों को परस्पर मिला देने से पंचमुख मुद्रा होती है ।

अन्त्रमुद्रा– दोनों हाथों को नीचे की ओर झुकाकर नाभिप्रदेश तक ले आयें । पुनः दोनों तर्जनी को कंधों के निकट तक ले जायँ तो अन्त्रमुद्रा बनती है

विष्वक्सेन मुद्रा (विष्णु मुद्रा) – बायीं तर्जनी को नासिका के निकट तक ले जाकर दायीं तर्जनी को दायीं ओर दंड के समतुल्य सीधा

रखने पर यह मुद्रा बनती है । यह मुद्रा विष्णु-पूजन के लिए प्रयुक्त की जाती है ।

गणेश मुद्रा– दक्षिण हस्त को मुख से सटाकर नीचे की ओर लम्बवत् झुकाये । अब उँगलियों को समेटकर मध्यमा तथा तर्जनी के मध्यभाग से अँगूठे को बहिर्गत कर ले तो सर्वसिद्धिदायिनी यह गणेश मुद्रा बन जाती है ।

न्यास मुद्रा– सम्पूर्ण रूप से अंगन्यास के लिए अँगूठे को अनामिका से संयोजित कर उन-उन अंगों के स्पर्शन से न्यास मुद्रा कही जाती है ।

सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा– बायीं मुट्ठी बंद कर तर्जनी को सीधी रखें। तदनन्तर उसे कर्ण के निकट ले जाकर चतुर्दिक् घुमायें तो सौभाग्यदंडिनी मुद्रा बन जाती है ।

चतुरस्त्र मुद्रा– बायीं कलाई के ऊपर दायीं कलाई रखकर दोनों हाथों को विस्तृत कर देने से चतुरस्त्र मुद्रा होती है । इस मुद्रा का उपभोग गुरुपूजा के समय किया जाता है ।

रिपुजिह्वाग्रहामुद्रा– ऊपर लिखित सौभाग्यदंडिनी मुद्रा में ही अँगूठे को भीतर की ओर ले जाकर उसे पैरों के नीचे दबाने से यह मुद्रा बनती है। इस मुद्रा के द्वारा शत्रु का मुखस्तम्भन होता है ।

दीपदान के समय दीपमुद्रा, दीप प्रज्वलन काल में त्रिखण्डा मुद्रा, शिखाबंधन में अंकुश मुद्रा, विघ्ननिवारण के लिए तर्जनी मुद्रा तथा क्रोध मुद्रा का प्रदर्शन करना चाहिए । आसन-शुद्धि के निमित्त अँगूठे से लेकर कनिष्ठा पर्यन्त, उँगलियों से कोहनी तक, पुनः समस्त शरीर में 'अस्त्राय फट्' कहते हुए न्यास कर्म करना उचित है ।

क्रोधमुद्रा– तर्जनी को अलग रखकर हाथ की मुट्ठी बन्द कर लें, फिर हाथ को सीधी रखें तो क्रोधमुद्रा बनती है । दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा उँगली से बायीं हथेली पर तीन बार 'अस्त्राय फट्' कहकर शब्द-ध्वनि करना चाहिए । जल-शुद्धिकरण के लिए धेनुमुद्रा तथा शंख को जलापूरित कर उसे घुमाते समय गालिनी मुद्रा का प्रदर्शन करें । शक्तिपूजन एवं नमस्कार में सदैव ही योनिमुद्रा दिखायें ।

बलिदान मुद्रा– बलिप्रदान करने के नियम भी अलग-अलग प्रकार के हैं, जैसे– क्षेत्रपाल के लिए बलि देते समय बायीं अनामिका और अँगूठे से, भैरव के लिए तर्जनी तथा अँगूठे को मिलाकर, योगिनियों के लिए

मध्यमा, अनामिका एवं अँगूठे से एवं विघ्नविनाशक गणेश की बलि मध्यमा को टेढ़ी करके दी जाती है ।

विष्णुपूजन में वर्णित वेणुमुद्रा का प्रदर्शन गोपाल (श्रीकृष्ण) पूजन में करना उचित होता है । इसी प्रकार संतानगोपाल के निमित्त ज्ञानमुद्रा, वाराहपूजन में वाराही मुद्रा, नृसिंहपूजा में नारसिंही, श्रीराम-पूजा में धनुष, बाण, विष्णु-पूजन में शंख, चक्र, गदा और पद्म तथा गणेश एवं परशुराम पूजन में परशु मुद्रा प्रदर्शित करने का नियम कहा गया है ।

तर्पण मुद्रा– तर्पण कार्य में तत्त्वमुद्रा दिखानी चाहिए । इसमें बायीं अनामिका तथा अँगूठे का संयोजन करना पड़ता है । तर्पण कर्म में दक्षिणमार्गी साधक को दाएँ हाथ से पूजन तथा बाएँ हाथ से तर्पण करते हुए देखा जाता है, परन्तु वाममार्गी दाहिने हाथ से तर्पण तथा बाएँ हाथ से पूजन का कार्य सम्पन्न करते हैं । साधारणतया लोकव्यवहार में दोनों हाथों को एक साथ संयुक्त कर तर्पण करना ही विहित माना जाता है ।

सर्वरक्षाकरी कुम्भमुद्रा– दोनों हाथ की मुट्ठियों को बाँधकर ऊपर की ओर उठायें और अँगूठे को तर्जनी के आगे ले जायँ तो सर्वरक्षाकरी कुम्भ मुद्रा बन जाती है । विघ्नविनाश के लिए कालकर्णी या मुसलमुद्रा का प्रयोग नियमतः करना चाहिए । मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठापन हेतु लेलिहान मुद्रा का प्रयोग श्रेयस्कर कहा जाता है । बंधनराहित्य के लिए दैत्यघूमिनी मुद्रा का प्रयोग करना उचित ठहराया गया है ।

लड्डूक मुद्रा– दाहिनी हथेली को नतोदर अवस्था में रखकर उँगलियों को किंचित् झुकाकर मोड़ लें और पुनः अधोमुख कर दें तो गणेश-पूजन में काम आने वाली लड्डूक मुद्रा बन जाती है ।

प्रणव मुद्रा– पाँचों उँगलियों के सहारे नाक के नथुनों को दबाने से प्रणव मुद्रा होती है ।

विस्मय मुद्रा– दायीं मुट्ठी बंदकर उसकी तर्जनी को अलग रखें तथा उसे नासिका से स्पर्श करायें ।

बीजपूर मुद्रा– बायीं मुट्ठी बंदकर करतल को ऊपर उठायें ।

प्राणायाम मुद्रा– दाएँ अँगूठे से दाएँ नथुने को तथा अनामिका और कनिष्ठा मिलाकर बायीं नाक के रंध्रों को दबाने से प्राणायाम मुद्रा होती है ।

महांकुश मुद्रा–इसका प्रयोग आकर्षण एवं स्तम्भन कर्म में होता है ।

गोकर्ण मुद्रा– दाएँ अँगूठे के अगले भाग को मध्यमा के बीच वाले

पोर की जड़ में लगाया जाता है । यह मुद्रा प्रायः आचमन हेतु प्रयुक्त होती है ।

आचमन मुद्रा– दाएँ हाथ की तर्जनी, मध्यमा और अनामिका को परस्पर मिलाकर कनिष्ठा तथा अंगूठे का सीधा प्रसारण करने से आचमनी मुद्रा बनती है ।

खेचरी मुद्रा– बायीं भुजा को दाहिनी ओर तथा दायीं भुजा को बायीं ओर रखते हुए हाथ के पिछले भाग से कनिष्ठा को कनिष्ठा से और अनामिका को अनामिका के साथ मिला लें । दोनों तर्जनियों से दोनों मध्यमाओं पर दबाव डालें और अँगूठे को सीधा रखें तो खेचरी मुद्रा बनती है ।

महामुद्रा– दोनों हाथों का विस्तार करके अंगूठों को आपस में मिला लें तो यह महामुद्रा बनती है । इस मुद्रा के द्वारा पूजा में होनेवाली भूल-चूक या त्रुटियों की पूर्ति हो जाती है ।

वनमाला मुद्रा– यदि दोनों तर्जनियों को कन्धों से लेकर चरणों तक घुमाएँ तो वनमाला मुद्रा कही जाती है ।

बाराह मुद्रा– दायें हाथ के पीछे बायाँ हाथ रख लें । अब बाएँ हाथ की उँगलियों को सिकोड़कर दायें करतल तक ले आयें । पुनः दाएँ हाथ की उँगलियों को समेटकर बाएँ हाथ की उँगलियों पर स्थापित कर दें ।

षट्कर्मानुसार तर्पण की विशिष्ट मुद्राएँ

आभिचारिक कर्मों में तर्जनी और अंगूठे से तर्पण करने का विधान है । शांतिकरण एवं पुष्टिकरण के निमित्त अंगूठे और मध्यमा की सहायता से तर्पण करें । वशीकरण में अंगूठे और अनामिका के द्वारा करें । स्तम्भन प्रयोग में कनिष्ठा और अंगूठा मिलाकर करें ।

सूची मुद्रा– मुट्ठी बंदकर तर्जनी को अलग रख लेने पर सूची मुद्रा होती है । इसी मुद्रा को चतुर्दिक् घुमाये जाने पर रक्षामुद्रा भी बन जाती है।

क्षमापनी मुद्रा–दोनों हथेलियों को पलटकर उँगलियों को परस्पर ग्रथित कर डालें । पुनः उन्हें उलटा रखकर प्रणाम करने से क्षमापनी मुद्रा कही जाती है । पूजा-विसर्जन के समय संहारमुद्रा के साथ-साथ इस क्षमापनी मुद्रा का प्रदर्शन करना भी आवश्यक बतलाया गया है । इसे छोटिका मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है ।

उँगलियों के पर्व में कथित तीर्थस्थान– उँगलियों के बीच वाले पोर

को पितृतीर्थ माना जाता है । अत: इसी के द्वारा पितरों के सभी कर्म करने चाहिए । उँगलियों के अगले भाग को देवतीर्थ, अनामिका तथा कनिष्ठा की जड़ को कायतीर्थ कहा गया है । अंगुष्ठमूल को ब्राह्मतीर्थ माना जाता है ।

मन्त्रों के अधिष्ठाता देवता तथा हृदय, शिर आदि मुद्राओं के भेद

ऋषि– तंत्र शास्त्रानुसार प्रत्येक मंत्र का एक ऋषि, एक छंद तथा एक देवता माना जाता है । तंत्र-मंत्र के अधीश्वर भगवान शिव कहे गये हैं । जिस किसी ने भी अपनी तपस्या के बल पर उस मंत्र का ज्ञान प्राप्त कर लिया वही उस मंत्र का द्रष्टा कहलाने लगा । अत: मंत्रद्रष्टा को ही ऋषि की संज्ञा दी गयी । आध्यात्मिक क्षेत्र में मंत्रवेत्ता ऋषि को अपने धर्माचार्य के रूप में देखा जाने लगा । फलत: गुरु के आदेशानुसार मंत्र को शिरोधार्य करने के लिए ही शिरोभाग का स्पर्श किया जाता है । इस शिरोमुद्रा में मध्यमा तथा तर्जनी उँगली को मिलाकर शिर का स्पर्श करना पड़ता है ।

छन्द– 'छन्द' शब्द का अर्थ होता है मंत्रध्वनि का आच्छादक अत: छन्द का स्मरण करने के समय मुख का स्पर्शन करना पड़ता है । तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका उँगली को मिलाने पर मुखमुद्रा बनती है ।

देवता– जिस देवत्व शक्ति को मंत्र में आवाहित और न्यासित किया जाता है उस मंत्र के द्वारा देवता की सुप्त शक्ति का जागरण किया जाता है । इस कारण वही उस मंत्र का अधिष्ठाता देव कहा जाता है । उस देवता का हृदय में ध्यान करने के फलस्वरूप ही तीन उँगलियों— तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से हृदय स्पर्श किया जाता है । किसी-किसी के मतानुसाार केवल अँगूठे से हृदय का स्पर्श करना उचित बतलाया गया है । प्राय: प्रत्येक मंत्र का एक बीजात्मक वर्ण होता है, परन्तु जिन मंत्रों में ब़ीजाक्षर का निर्धारण नहीं किया गया है उनमें इस प्रकार से समझना चाहिए, जैसे— लक्ष्मी की आराधना में 'श्रीं', दशमहाविद्याओं के लिए 'ह्रीं', सरस्वती के लिए 'ऐं', दुर्गा के लिए 'दुं', गणेश में 'गं' तथा राममंत्र में 'सं' बीजाक्षर के रूप में माना जाता है । इस प्रकार सम्मिलित रूप में इन्हें 'श्रीं ह्रीं ऐं' भी कहते हैं ।

मंत्र में एक विशेष प्रकार की शक्ति निहित होती है और वही शक्ति

उसे गतिशील बनाकर उसमें प्रभावोत्पादकता लाती है, इस हेतु चरणों में उसका न्यास किया जाता है । अँगूठे को अलग रखकर चारों उँगलियों से दोनों पाँवों का स्पर्शन करने से शक्तिन्यास मुद्रा बनती है । मंत्र का किसी एक स्थान में स्थिरीकरण के लिए कीलक का प्रयोग किया जाता है । इसके प्रयोगकाल में 'कीलकाय नमः नाभौ' पढ़कर पाँचों उँगलियों के साथ नाभि-प्रदेश का स्पर्श करना होता है ।

मातृका-न्यास की मुद्रा में निम्नलिखित नियम अपनाएँ—

भाल– (ललाट) का स्पर्श अनामिका और मध्यमा के साथ करे।

मुखमण्डल– तर्जनी, मध्यमा, अनामिका– तीनों से करें ।

नेत्र– तर्जनी और अनामिका को एक साथ मिलाकर करें ।

कर्ण– दोनों कानों का अँगूठे के द्वारा स्पर्श करें ।

नासिका– कनिष्ठा तथा अँगूठा के साथ दोनों नासारन्ध्रों का स्पर्श करना चाहिए ।

गण्डस्थल– दोनों कपोलों को मध्यमा के द्वारा स्पर्श करें । मध्यमा से मस्तक, अनामिका से दंतावलि, अनामिका-मध्यमा के संयोग से मुख तथा मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठा को मिलाकर हाथ-पैर, बगल और पीठ का स्पर्श करना श्रेष्ठ है । तर्जनी उँगली को पृथक् रखकर शेष चारों उँगलियों से नाभिस्थल तथा पाँचों उँगलियों को एक साथ संयुक्त कर कुक्षि, हृदय तथा ककुद (कूबड़) का भी स्पर्श करना चाहिए । ऋष्यादिन्यास, षडंगन्यास तथा बहिर्मातृका न्यास उनकी कथित मुद्राओं के अनुरूप करना ही उचित एवं आवश्यक कहा गया है ।

हृदयादिन्यास का आशय– अंगन्यास प्रारम्भ करते समय सबसे पहले 'हृदयाय नमः' का उच्चारण कर हृदय को स्पर्श करने का विधान है। इसमें 'हृदयाय' कहने का यही अभिप्राय होता है कि मैं जिस देवता के निमित्त जाप करने जा रहा हूँ उस देवता के लिए नमः वाक्य बोलकर उसका नमन कर रहा हूँ । इसका अन्य भावार्थ यह भी है कि मैं हृदयस्थ चेतन आत्मा को प्रणाम कर रहा हूँ । अथवा हृदय में अवस्थित उस देवशक्ति से तादात्म्य स्थापित करने के लिए हृदय का स्पर्शन करता हूँ ।

इसके पश्चात् 'शिरसे स्वाहा' शब्द उच्चरित कर शिर का स्पर्श करना होता है । हमारे सम्पूर्ण शरीरांगों में जिस प्रकार शिर का स्थान सर्वोपरि है उसी प्रकार उस देवता की सर्वश्रेष्ठता मानकर हम उसके लिए समस्त इंद्रिय सम्बन्धी विषयों का अर्पण करते हैं ।

तदनन्तर 'शिखायै वषट्'' बोलकर शिखा का स्पर्श करना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह होता है कि जिस भावनात्मक विचार के द्वारा हृदय तथा शिर का स्पर्श किया गया है उसे ही शिखा के स्पर्श से अत्यधिक सुदृढ़ बनाया जाता है । 'कवचाय' कहने से देवता की व्यापकता का अनुभव होता है और 'हुम्' कहकर उसकी तेजस्विता को प्रकाशित किया जाता है ।

नेत्रों के स्पर्श-काल में 'नेत्रत्रयाय वौषट्' का उच्चारण किया जाता है तथा मध्यमा के स्पर्श द्वारा भ्रूमध्य के तेज को जागृत अवस्था में लाया जाता है । 'अस्त्राय फट्' कहकर बायीं हथेली पर दाहिनी तर्जनी और मध्यमा उँगलियों के सहारे स्फोट की ध्वनि की जाती है जिसका उद्देश्य विघ्न-बाधाओं को दूर करना होता है । सभी प्रकार के न्यासों में अंगन्यास तथा करन्यास करना अत्यन्त आवश्यक कहा गया है । अत: विधिवत् मंत्र-साधना करने वाले साधक के निकट भूत-प्रेत, पिशाच, वेतालादि कभी फटकने का साहस भी नहीं करते और न ही उन्हें किसी प्रकार के विघ्नों का सामना ही करना पड़ता है । (तन्त्रसार)

पुरश्चर्यार्णव के मतानुसार कुछ मुद्राओं के प्रायोगिक लक्षण

अंग मुद्रा– अंगमुद्रा के लक्षण निम्नलिखित प्रकार से बताये गये हैं—

हृदये मध्यमानामातर्जनीभिर्न्यसेद्बुधः ।
मध्यमा तर्जनीभ्यां च शिरसि न्यासमाचरेत् ।।
अङ्गुष्ठेन शिखायां च दशभिः कवचे न्यसेत् ।
नेत्रेषु तिसृभिश्च स्यादस्त्रमूर्ध्वोर्ध्वगं त्रिशः ।
मध्यमा तर्जनीभ्यां स्यादंगमुद्रा स्मृता इमाः ।।

अर्थात् तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका — इन तीनों अंगुलियों के अगले पर्व से 'हृदयाय नमः' कहकर स्पर्श करें । तर्जनी और मध्यमा उँगलियों के द्वारा 'शिरसे स्वाहा' कहते हुए शिर एवं ललाट का स्पर्श करें। अँगूठे के अगले भाग से 'शिखायै वषट्' बोलकर शिखा (चोटी) का स्पर्श करें । दाहिने हाथ की सम्पूर्ण पाँचों उँगलियों से बायीं भुजा का स्पर्श 'कवचाय हुम् ' कहकर करना चाहिए । अब बाएँ हाथ की पाँचों उँगलियों को मिलाकर उसी प्रकार दाहिनी भुजा का स्पर्शन करें । दायीं तर्जनी से दायीं आँख का स्पर्श 'नेत्रत्रयाय वौषट् ' शब्द को बोलकर करना उचित है । अब

उसी तरह दायीं मध्यमा से बाएँ नेत्र का स्पर्श करें । भौंहों के मध्यवर्ती स्थान का स्पर्श अनामिका के द्वारा करें । जिस स्थान में 'नेत्राभ्यां वौषट् ' कहकर उच्चारण किया जाता हो वहाँ भ्रूमध्य को स्पर्शित करने का निषेध किया गया है । दायीं तर्जनी और मध्यमा को शिरोभाग से चतुर्दिक् घुमाते हुए बायीं हथेली पर उक्त दोनों उँगलियों से ताली बजाकर शब्दध्वनि करना चाहिए।

ऋष्यादिन्यास मुद्रा– अँगूठे को पृथक् रखकर शेष चारों उँगलियों की सहायता से 'अमुक ऋषये नमः शिरसि' कहकर शिरोभाग का स्पर्श करें। इसी प्रकार चारों उँगलियों के योग से मुख का स्पर्श 'अमुक छन्दसे नमः मुखे' बोलकर करें । हृत्प्रदेश का स्पर्शन 'अमुक देवतायै नमः हृदये' का उच्चारण करते हुए करें । दोनों चरणों का स्पर्श 'शक्तये नमः पादयोः' पढ़कर करना चाहिए । दाएँ अँगूठे को अलग रखकर चारों उँगलियों के द्वारा नाभि-प्रदेश का स्पर्श 'कीलकाय नमः नाभौ' कहकर करें । जिस स्थान में सर्वांग शब्द का प्रयोग हुआ हो वहाँ सभी उँगलियों को पृथक्-पृथक् रखकर शिर से पैर तक एवं पैर से शिर तक के अंगों का स्पर्श करना आवश्यक होता है ।

मातृका-न्यास करते समय अनामिका उँगली से उन सभी कथित अंगों का स्पर्श करना होता है । परन्तु देवता के प्राण-प्रतिष्ठापन का कार्य केवल पुष्प द्वारा ही सम्पन्न करने का नियम है ।

योगसाधना-सम्बन्धी कुछ मुद्राओं का विवेचन

योगसाधना के निमित्त व्यवहृत होने वाली मुद्राएँ देवोपासना की मुद्राओं से भिन्न प्रकार की होती हैं । देवपूजन में प्रदर्शित की जाने वाली मुद्राएँ हाथों एवं उँगलियों के उतार-चढ़ाव के फलस्वरूप ही बनती हैं, उनका प्रभाव भी अन्तर्मन पर ही पड़ता है परन्तु बाह्य रूप से उन मुद्राओं के द्वारा कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता । योगसाधना की मुद्राओं का संबंध बाहरी इंद्रियों से भी उतना ही है ज़ितना अन्तःचेतना से । इन मुद्राओं में प्रायः शरीर के सम्पूर्ण अंगों से सहायता ली जाती है । इन दिनों विदेशों में योग-साधना की मुद्राओं का प्रयोग स्वास्थ्य-लाभ एवं शारीरिक विकलांगता के निवारण हेतु विशेष रूप से प्रचलित होता जा रहा है ।

योगसाधना हेतु 'हठयोग प्रदीपिका' आदि ग्रन्थों में दश प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख पाया जाता है, जैसे— महामुद्रा, महाबंध, महावेध,

खेचरी मुद्रा, उड्डीयान बंध, जालंधर बंध, विपरीतकरणी मुद्रा, वज्रोली मुद्रा तथा शक्तिचालन मुद्रा ।

इसके अतिरिक्त कुछ अन्य योग-सम्बन्धी ग्रन्थों में इन मुद्राओं के बीस प्रकार भी बतलाये गये हैं, जैसे— महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान बंध, जालंधर बंध, मूलबंध, महाबंध, महावेध, खेचरी मुद्रा, विपरीतकरणी मुद्रा, योनिमुद्रा, वज्रोलीमुद्रा, शक्तिचालन मुद्रा, तड़ागी, मांडूकी, शाम्भवी मुद्रा,अश्विनी मुद्रा, पाशिनी मुद्रा, काकी मुद्रा, मातंगी एवं भुजंगिनी मुद्रा । (घेरण्ड संहिता)

महामुद्रा– पहले बाएँ पैर को समेटकर बायीं एड़ी को मलद्वार और जननेन्द्रिय के बीच सीवन पर लगाकर उसे दबायें । अब दाहिने पैर को सीधा फैला दें । पुन: दोनों हाथ की उँगलियों द्वारा दाएँ पैर की ऊपर की ओर उठी हुई अंगुलियों को पकड़ लें । शिर को इतना झुका लें कि वह दाएँ घुटने से जा लगे ।

कुछेक लोगों के मतानुसार इस मुद्रा से पूर्व मूलबंध की मुद्रा का प्रयोग करना कहा गया है जिसमें पहले वाम नासिका से पूरक प्राणायाम (प्राणायाम का एक भेद जिसमें दायीं नाक से श्वास ऊपर खींची जाती है) करने का विधान है । जालंधर बंध के प्रयोग-काल तक कुम्भक (प्राणायाम की वह प्रक्रिया जिसमें ऊपर खींची गयी श्वास को रोक रखा जाता है) के अनन्तर धीमी गति से दायीं नाक द्वारा रेचक (वह क्रिया जिसमें वायु को धीरे-धीरे बाहर निकाला जाता है) रेचक क्रिया करें । इसके अभ्यास-काल में ऐसी भावना रखनी चाहिए कि इड़ा और पिंगला नाड़ी से वायु का संचरण न होकर केवल सुषुम्ना नाड़ी में ही वायु का संचरण होता रहे । इस अभ्यास के द्वारा शरीर दण्ड के समान कड़ा होकर कुंडलिनी-शक्ति का जागरण हो उठता है । इसे क्रमश: बढ़ाते हुए नित्य पाँच प्राणायाम करने चाहिए । उक्त रीत्यानुसार दाएँ पैर को समेटकर दायीं एड़ी से गुदा एवं जननांग के सीवन को दाबकर बायाँ पैर भी सीधा फैलाएँ तथा दोनों हाथों से बाएँ पैर के अँगूठे को पकड़ लें ।

इस मुद्रा का एक अन्य प्रकार भी बतलाया गया है जिसमें मूलबन्ध की मुद्रा लगाकर शिर को नीचे की ओर इतना झुकाना पड़ता है कि वह दाएँ पैर के घुटने से मिल जाय । दाएँ पैर के घुटने पर दोनों हाथों को एक के ऊपर दूसरा रख देने पर नासिका का स्पर्श सुगमतापूर्वक होने लगता है । अब

नासिका के दोनों रन्ध्रों से पाँच बार हाथ के ऊपर घर्षण करें । पुनः बाएँ पैर को फैलाकर पूर्ववत् यही क्रिया करें ।

मुद्राभ्यास का परिणाम—इस मुद्रा के अभ्यास से गरिष्ठाहार लेने पर भी कोई दुष्परिणाम नहीं होता । इसके द्वारा उदर-विकार नष्ट होते तथा पाचन-क्रिया बिल्कुल ठीक रहती है तथा क्षुधाग्नि की वृद्धि होती है । इसके अभ्यासी को प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, जलोदर आदि रोगों का शिकार नहीं बनना पड़ता । यहाँ तक कि इससे वलीपलित (असमय में ही केशों की श्वेतता एवं त्वचा के ऊपर झुर्रीं पड़ना) रोग भी दूर हो जाते हैं । इस मुद्रा के अभ्यास-काल में दृष्टि भ्रूमध्य में जमानी चाहिए । इस मुद्रा का अभ्यास किसी सुयोग्य गुरु के मार्गदर्शन से ही किया जाना चाहिए ।

महाबन्ध— इसमें पद्मासन लगाकर बैठने के बाद वाम नासिका से बलपूर्वक पाँच बार प्राणायाम की रेचक क्रिया सम्पन्न करें । पुनः बाएँ भाग से ही पूरक की क्रिया करके दोनों हाथों को पृथिवी पर टिका दें । फिर थोड़ा ऊपर की ओर उठकर मन में यह चिन्तन करते रहें कि कुंडलिनी का जागरण हो रहा है । इस प्रकार नितम्ब के स्थान पर प्रताड़न की प्रक्रिया करें । इसके पश्चात् दायीं नाक के छिद्रों मे रेचक करें । पुनः इसी क्रिया को दाएँ नथुने से पुनरावर्तित करें । यह श्रेष्ठतम मुद्रा जरा-मृत्युनाशक है । इसके द्वारा अभीप्सित फल की प्राप्ति होती हैं । इस महाबंध मुद्रा के प्रयोग-काल में समस्त नाड़ियों के द्वार अवरुद्ध होने के कारण मात्र सुषुम्ना नाड़ी से ही प्राण का संचरण होता रहता है । इसके द्वारा यमराज के फन्दे से भी प्राणी को मुक्ति मिल जाती है । इस मुद्रा का अभ्यास भी गुरु के मार्गदर्शन में ही करना उचित है । गुरु का आश्रय लिये बिना जो व्यक्ति स्वयं करता है उसे कोई लाभ न होकर हानि की संभावना रहती है ।

महावेध— किसी चौरस भूमि में महाबन्ध की मुद्रा लगाकर दोनों हथेलियों को टिकायें, फिर जमीन से थोड़ा ऊपर उठकर नितम्बों को ताड़ित करें । ऐसा करने पर वायु के साम्यावस्था में आ जाने से जालंधर मुद्रा बाँधकर स्थिर रूप से सुषुम्ना नाड़ी में प्राण संचरण की कल्पना करें । तदनन्तर रेचन-क्रिया के द्वारा वायु को बाहर निकाल दें । इसके अभ्यासी को वलीपलित (बालों की सफेदी तथा चमड़े की झुरियाँ) रोग से मुक्तिं मिल जाती है तथा अंगों का कम्पन भी बन्द हो जाता है ।

खेचरी मुद्रा— जीभ को पलटकर लंबिका के पीछे ऊपर के तालुमूल

से मिला दे और दृष्टि को भ्रूमध्य में स्थिर कर लें तो खेचरी मुद्रा होती है। इस मुद्रा का अभ्यास करना अत्यन्त दुरूह कार्य है । अत: इसके लिए भी गुरु का मार्गदर्शन आवश्यक होता है । इस मुद्रा के सिद्ध हो जाने पर सम्पूर्ण इन्द्रियों को वशीभूत किया जा सकता है ।

उड्डीयान बंध– इसके लिए नाभि को चारों ओर से समेटकर आँतों को पीठ से एकीकृत कर दिया जाता है । इसके द्वारा पंच प्राणों (प्राण,अपान, समान, व्यान और उदानवायु) का शुद्धिकरण होता है । इस मुद्रा का अभ्यास आसीनावस्था (भूमि पर बैठना), उत्थितावस्था या घुटनों के सहारे किया जा सकता है ।

मूलबन्ध– इसमें मलद्वार को सिकोड़कर उसे एड़ी से दबायें तथा अपानवायु को ऊपर की ओर चढ़ायें तो मूलबंध की मुद्रा होती है । इसके अभ्यास से वीर्यरक्षण तथा धातु का पुष्टिकरण होता है । इसके द्वारा क्षुधाग्नि प्रज्वलित होती तथा दीर्घकाल तक यौवनावस्था बनी रहती है । इसका अभ्यास सरलतापूर्वक किया जा सकता है । इस क्रिया से अपानवायु का संसर्ग प्राणवायु के साथ होता है । पुन: प्राण-अपान के योग से सुषुम्ना नाड़ी में भी संचरण होने लगता है ।

जालन्धर बंध– पूरक प्राणायाम कर लेने के अनन्तर कुम्भक की क्रिया सम्पन्न करने के लिए गले को नीचे की ओर लटकाकर ठुड्डी को वक्ष:स्थल से लगाने पर जालंधर बंध बनता है । इसके द्वारा कुम्भक के समय खींचीं हुई साँस को रोक रखने में सुगमता होती है । परन्तु रेचक के समय इसे खोल देना आवश्यक होता है । इस बंध को करने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती । परन्तु साधक की असावधानीवश कभी-कभी मेरुदण्ड वक्राकार हो जाता है । अत: इसके अभ्यास-काल में मेरुरज्जु को सदैव सीधा रखना चाहिए ।

वज्रोली मुद्रा– इस मुद्रा का अभ्यास अत्यन्त दु:साध्य है । अत: इसे गुरु के आदेशानुसार ही करना चाहिए ।

विपरीतकरणी मुद्रा– शरीर के ऊपरी भाग में चन्द्र एवं निचले भाग में सूर्य की अवस्थिति मानी जाती हैं । चंद्रनाड़ी से क्षरित होने वाले अमृत-स्राव को सूर्यनाड़ी सुखा दिया करती है जिसके परिणाम-स्वरूप शरीर में जीर्णता आ जाती है । परन्तु विपरीतकरणी मुद्रा से चंद्र द्वारा स्रवित होने वाले पीयूष को सूर्य सुखा नहीं सकता । फलस्वरूप इस अमृत-स्राव के द्वारा

शरीर का पुष्टिकरण एवं वर्धन होता है । कुछ ही महीने के अभ्यास से मानव वलीपलित रोग से रहित हो जाता है ।

विपरीत का शाब्दिक अर्थ उलटा होता है । अत: इसके लिए शिर को भूतल से टिकाकर दोनों हाथों को फैला रखे । अब दोनों पैरों को ऊपर की ओर करें । शरीर को ऊपर उठाते हुए दोनों नितम्बों को हाथ का सहारा देते रहें । इस प्रक्रिया के द्वारा तालुमूल में अवस्थित चन्द्र की गति नीचे की ओर और नाभि में स्थित सूर्य ऊर्ध्वमुखी हो जाता है । इस मुद्रा के प्रयोग से क्षुधाग्नि प्रदीप्त होती है ।

शक्तिचालन मुद्रा– पहले सिद्धासन लगाकर बैठ जायँ, पुन: हथेलियों को भूमितल पर जमा दे । हाथों का बल लगाकर दोनों नितम्बों को भूमि से ऊपर उठाकर २०-२५ बार धरती पर प्रताड़न करें । तदनन्तर प्राणवायु का अवरोधन कर मूलबन्ध लगा लें । अब प्राणवायु को अपान-वायु के साथ मिलाकर जालंधर बंध बाँध लें । कुम्भक प्राणायाम की क्रिया जितनी देर तक सम्भव हो सके, करें । इस क्रिया से कुण्डलिनी की जागृति होने में सहायता मिलती है । अपानवायु की ऊष्मा पाकर वह निद्रितावस्था से गतिशील हो उठती है । इसी कारण इस मुद्रा को शक्तिचालन मुद्रा का नाम दिया गया है । इसके द्वारा शरीरस्थ सभी नाड़ियों का शोधन हो जाने से वे विकाररहित हो जाती हैं ।

अश्विनी मुद्रा– मलद्वार को बार-बार सिकोड़ने और फैलाने से अश्विनी मुद्रा होती है । इसके अभ्यास से अर्श, भगन्दर तथा शुक्रविकार नष्ट हो जाते हैं ।

षण्मुखी मुद्रा– दोनों कान के विवरों को हाथ के दोनों अँगूठों से बन्द कर लें, फिर दोनों तर्जनी से दोनों नेत्र तथा दोनों मध्यमा से नासिका बन्द करें । अब दोनों अनामिका को होंठ के ऊपर तथा दोनों कनिष्ठाओं को होंठ के नीचे रख उन्हें दबाकर मुँह बन्द कर लें । तत्पश्चात् एड़ी की सहायता से मल-मूत्र के द्वारों का अवरोध करें तो षण्मुखी मुद्रा कही जाती है ।

काकी मुद्रा– जिह्वा का आकुंचन कर कुछ अंश को बहिर्गत करते हुए मुखाकृति को कौए की चोंच के समान बना डालें । अब इस काकी मुद्रा के द्वारा पूरक क्रिया करें ।

योनिमुद्रा– सर्वप्रथम सिद्धासन लगाकर षण्मुखी मुद्रा का प्रयोग करें। इसमें मुँह की आकृति कौए की चोंच के समान करके काकी मुद्रा से

पूरक प्राणायाम के द्वारा प्राणवायु को अपानवायु के साथ मिला दें। मुख को अनामिकाओं और कनिष्ठाओं से बंद न कर खुला ही रखें। पुनः मन में ऊँकार का जाप करते हुए ऐसी कल्पना करें कि षट्चक्रों को बेधती हुई कुंडलिनी ऊपर की ओर उठ रही है। देवपूजन में प्रयुक्त होने वाली योनिमुद्रा इससे भिन्न प्रकार की कही गयी है।

योगमुद्रा–पद्मासन लगाकर पैर की एड़ियों पर हाथों को रख लें। बाएँ मणिबंध को दाएँ से पकड़ लें। अब आगे की ओर झुककर श्वास को शनैः शनैः निकालते हुए मस्तक को भूमि से सटा लें तो योगमुद्रा बन जाती है। इसके द्वारा औदरिक रोगों का निवारण होता है।

शाम्भवी मुद्रा– दोनों भौंहों के मध्यवर्ती भाग में दृष्टि को स्थिर रखने से शाम्भवी मुद्रा होती है। इस मुद्रा में नासिका के अगले भाग पर इस प्रकार दृष्टि जमा लें कि किसी ओर कुछ भी दिखायी न दें। सबसे पहले इसका अभ्यास नेत्रों को पूर्ण रूप से बंद करके किया जाता है, पुनः आधा खुला रखकर और अन्त में पूरी तरह से आँखों को खोलकर किया जाता है। नेत्रों को खुला रखने पर पलकों का निश्चल रहना ही इसकी सफलता के लक्षण कहे गये हैं।

चिन्मुद्रा– उपर्युक्त रीति से बैठकर तर्जनी के अगले भाग को अंगूठे की जड़ से लगाना ही चिन्मुद्रा कहा जाता है।

उन्मनी मुद्रा– उक्त विधि से बैठकर अधखुली आँखों से नासिका की नोक पर दृष्टि जमा लेने पर उन्मनी मुद्रा कही जाती है। इन मुद्राओं के सफल अभ्यास से शारीरिक रोगों— प्रमेह, प्लीहा, खाँसी, दमा आदि का शमन होता है। (घेरंड संहिता)

पूर्व लिखित दश प्रकार की मुद्राओं – महामुद्रा, महाबंध, महाबेध, खेचरी, उड्डीयान बंध, जालंधर बंध, विपरीत, वज्रोली तथा शक्ति-चालन के अभ्यास द्वारा मानव को अष्ट सिद्धियों की उपलब्धि हो जाती हैं। वे अष्ट सिद्धियाँ इस प्रकार से कही गयी हैं—

१. **अणिमा**– मानसिक संकल्प से ही शारीरिक सूक्ष्मता की प्राप्ति।

२. **महिमा**–इच्छामात्र से ही शरीर को बढ़ा लेना ही महिमा सिद्धि है।

३. **गरिमा**– अल्प भार होते हुए भी पर्वत के सदृश भारवान् बन जाना।

४. **लघिमा**– अत्यन्त भारवान् होते हुए भी हल्का हो जाना।

५. प्राप्ति– मन में किसी वस्तु की कामना करते ही इच्छापूर्त्ति होना ।

६. प्राकाम्य– मानसिक इच्छामात्र से ही सम्पूर्ण कामना की पूत्ति होना । इसी सिद्धि के बल पर भरद्वाज मुनि ने राम के वनवास काल में उनके अनुज भरत-शत्रुघ्न सहित उनकी सेना का सत्कार किया था ।

७. ईशित्व– सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों के निर्माण एवं उनके विनष्टीकरण की क्षमता ।

८. वशित्व– किसी को अपने अधीन बना लेने का सामर्थ्य ।

यदि देवोपासना-काल में इन मुद्राओं का भी उपयोग किया जाय तो उनकी उपादेयता में अभिवृद्धि हो जाती है । (हठयोग प्रदीपिका)

गायत्री-पूजन में व्यवहृत होने वाली मुद्राएँ

गायत्री उपासना हेतु जपारम्भ से पूर्व चौबीस एवं जपान्त में आठ मुद्राओं के प्रदर्शन का विधान पाया जाता है । गायत्री मंत्र चौबीस वर्णात्मक होने के फलस्वरूप विभिन्न नामों से उनके चौबीस ऋषि, चौबीस छन्द तथा चौबीस ही देवता भी माने गये हैं । इस सन्दर्भ में प्रत्येक वर्ण का पृथक्-पृथक् रूप से उनके ऋषि, छन्द तथा देवता का नीचे उल्लेख किया जा रहा है । मुद्रा के सम्बन्ध में कहा गया है —

अथातो दर्शयेन्मुद्राः संमुखं सम्पुटं तथा ।
ततो विततविस्तीर्णे द्विमुखत्रिमुखे ततः ।
चतुर्मुखं पंचमुखं षण्मुखाधो मुखे ततः ।
व्यापकांजलिकं चैव शकटं तदनन्तरम् ।
यमपाशं तु ग्रथितं ततः स्यात्संमुखोन्मुखम् ।
विलम्बो मुष्टिको मीनस्ततः कूर्मवराहकौ ।
सिंहाक्रान्तं महाक्रान्तं ततो मुद्‌गरपल्लवौ ।
एताः मुद्राश्चतुर्विंशद्गायत्र्याः सुप्रतिष्ठिताः ।।

अर्थात् सम्मुख, सम्पुट, वितत, विस्तीर्ण, द्विमुख अथवा एकमुख, त्रिमुख, चतुर्मुख, पञ्चमुख, षण्मुख, अधोमुख, व्यापक, अंजलि, शकट, यमपाश, ग्रथित, सम्मुखोन्मुख, विलम्ब, मुष्टि, मत्स्य, कूर्म, वाराह, सिंहाक्रान्त, महाक्रान्त, मुद्‌गर एवं पल्लव ।

इस प्रकार उपर्युक्त चौबीस मुद्राएँ कही गयी हैं। इसमें व्यापकांजलि की गणना भी एक ही मुद्रा के अन्तर्गत की जाती है।

पहला वर्ण– गायत्री मंत्र का प्रथम वर्ण 'तकार' है। इसके ऋषि वसिष्ठ, छन्द गायत्री तथा देवता अग्नि हैं। यह पीतवर्णीय और पृथिवी-तत्त्व से युक्त है, इसकी ब्राह्मणी शक्ति और तपनी कला है। इसके लिए दोनों हाथों की उँगलियों को समेट कर एक साथ मिलायें और ऊपर की ओर उठा दें तो यह सम्मुख नाम्नी मुद्रा हो जाती है। इसमें हाथों की मुड़ी हुई अँगुलियाँ हृदय के समक्ष और केहुनी कोणाकृति रहती है। यह मुद्रा आयुष्यवर्धक कही जाती है।

दूसरा वर्ण- 'त्स' के ऋषि भरद्वाज, छन्द उष्णिक् तथा देवता वायु है। यह श्यामवर्णीय, जलतत्त्व संयुक्त, गौरी शक्ति तथा सकला कला है। इस सम्पुट मुद्रा के लिए दोनों हाथों की उँगलियों को किंचित् आकुंचित कर लें और उनके अगले भाग को मिला दें तो उसका आकार कमलकोष के तुल्य बन जाता है। इसे आरोग्यवर्धक माना जाता है।

तीसरा वर्ण– गायत्री मंत्र का तीसरा अक्षर 'वि' है। इसके ऋषि गौतम, छन्द अनुष्टुप् तथा देवता सूर्य हैं। यह श्वेतवर्णीय तथा अग्नितत्त्व है। इसकी शक्ति प्रभा और कला विश्वा है। इसमें दोनों हाथों की उँगलियों को मिलाकर हाथों को सामने की ओर रखने से यह वितत मुद्रा बनती है। यह मुद्रा ऐश्वर्यप्रदायिनी मानी जाती है।

चौथा वर्ण– इसका चौथा वर्ण 'तु' है। इसके ऋषि विश्वामित्र, छन्द बृहती तथा देवता विद्युत् हैं। यह नीलवर्णा, वायुतत्त्वयुक्ता, नित्या शक्ति तथा तुष्टा कला है। इसमें दोनों हाथों को पृथक् रखकर उँगलियों को फैला देने से यह विस्तीर्ण मुद्रा बनती है। इस मुद्रा को धनप्रदायक माना जाता है।

पाँचवाँ वर्ण– मंत्र का पंचम वर्ण 'र्व' है। इसके ऋषि भृगु, छन्द पंक्ति और देवता यम है। अग्नितुल्य वर्ण और आकाश तत्त्व है। इसकी शक्ति विश्वा, कला वरदा तथा मुद्रा द्विमुख है। दोनों हाथों की अनामा से अनामा तथा कनिष्ठा के साथ कनिष्ठा उँगली को परस्पर मिलाने से यह द्विमुख मुद्रा बन जाती है। इस मुद्रा के द्वारा अभिलाषा की पूर्ति होती है।

छठा वर्ण– गायत्री मंत्र का छठवाँ वर्ण 'रे' है। इसके ऋषि शाण्डिल्य, छन्द त्रिष्टुप् और देवता वरुण है। इसका वर्ण श्वेत, गंधगुण, शक्ति मुद्रा और कला रेवती है। इसमें दोनों हाथों की मध्यमा, अनामा तथा

कनिष्ठा उँगलियों को मिला देने से यह त्रिमुख मुद्रा बन जाती है । इसके द्वारा विद्या की प्राप्ति सम्भव होती है ।

सातवाँ वर्ण– मंत्र का सातवां अक्षर 'णि' है । इसके ऋषि लोहित, छन्द व्यक्ति और देवता बृहस्पति कहे गये हैं । इसका गुण रसप्रधान, वर्ण हरित, शक्ति विलासिनी, कला सूक्ष्मा है । दोनों हाथों की चारों उँगलियों को एक साथ मिला देने पर यह चतुर्मुख मुद्रा बन जाती है । इसे कामप्रदायिनी मुद्रा के रूप में माना जाता है ।

आठवाँ वर्ण– इसका आठवाँ वर्ण 'यं' है । इसके ऋषि गर्ग, छन्द कांति और देवता पर्जन्य हैं । इसमें रूप गुण की प्रधानता तथा रंग अग्नि के समान चमकीला है । इसकी शक्ति वित्ता और कला ज्ञाना है । इस मुद्रा में दोनों हाथों की सभी उँगलियाँ परस्पर मिलित रहती हैं, परन्तु मणिबंध (कलाई) से अलग रहती है । इस पंचमुख मुद्रा को धनैश्वर्यप्रदायक कहा जाता है ।

नवाँ वर्ण– गायत्री मंत्र का नवाँ अक्षर 'भ' है । इसके ऋषि शातातप, बृहती छन्द तथा देवता इन्द्र हैं । यह ताम्रवर्णीय तथा स्पर्श गुण से युक्त है । इसकी शक्ति काली और भर्गा कला है । इसमें कनिष्ठा को अलग रखा जाता है जबकि पंचमुख मुद्रा में सभी उँगलियाँ परस्पर मिली रहती हैं। इसका अगला भाग थोड़ा झुका हुआ रहता है । इस षण्मुख मुद्रा को संतानदात्री माना जाता है ।

दशवाँ वर्ण– इसके सनत्कुमार ऋषि, सत्या छन्द तथा गन्धर्व देवता हैं । रक्तिम वर्ण, शब्द गुण, शक्ति जया तथा गोमती कला है । इसमें हथेली नीचे की ओर तथा तर्जनी सहित चारों उँगलियाँ करपृष्ठ की ओर मिली रहती हैं । अँगूठें का स्पर्श नहीं होने पाता । इस अधोमुख मुद्रा के फलस्वरूप अभिलषित कन्या की उपलब्धि का होना बताया गया है ।

ग्यारहवाँ वर्ण– इसके शुनःशेप ऋषि, पंक्ति छन्द तथा त्वष्टा देवता कहे गये हैं । इसका श्यामल वर्ण वाणी से संबद्ध है । इसकी कला दर्विका तथा कांता शक्ति है । इसमें हथेली को बाहर की ओर सीधे रखा जाता है। इसके लिए बाएँ हाथ को बायीं ओर तथा दाहिने हाथ को दायीं ओर मोड़कर यह व्यापकांजलि मुद्रा बनायी जाती है । इस मुद्रा को अभीष्ट फलदायक माना जाता है ।

बारहवाँ वर्ण– इस मंत्र के बारहवें अक्षर 'व' के भार्गव ऋषि,

विराट् छन्द और मित्रावरुण देवता हैं । यह हस्तेन्द्रिय से सम्बन्धित पीतवर्णीय है । इसकी शक्ति शांता और वरा नाम की कला है । इसमें शकट मुद्रा दिखाने के लिए दोनों हाथों को पलटकर अँगूठे मिलाये जाते हैं । मध्यमा,अनामा तथा कनिष्ठा को किंचित् सिकोड़कर तर्जनी उँगली को नीचे झुकाया जाता है । इस मुद्रा से कांतिवर्धन होता है ।

तेरहवाँ वर्ण– गायत्री मंत्र का त्रयोदश वर्ण 'स्य' है । इसके पराशर ऋषि,विभ्राट् छन्द तथा पूषा नामक देवता है । इसका रंग विद्युत् के समान प्रभावान् तथा सम्बन्ध चरणों से है । इसकी शक्ति दुर्गा और सिद्धान्ता इसकी कला है । इसकी यमपाश मुद्रा के लिए दोनों हाथों की मुट्ठियों को बाँधकर वाम तर्जनी से दक्षिण तर्जनी उँगली को गुम्फित किया जाता है । इसके द्वारा मानसिक संकल्पों की सिद्धि होती है ।

चौदहवाँ वर्ण– गायत्री मंत्र के चौदहवें अक्षर 'धी' के ऋषि पुंडरीक, छन्द प्रस्तार पंक्ति तथा देवता देवराज इन्द्र हैं । यह जननेन्द्रिय से सम्बन्धित श्वेत वर्ण वाला है । इसकी शक्ति सरस्वती तथा ध्यान कला है । इसकी ग्रथित मुद्रा प्रदर्शित करते समय दोनों हाथों की उँगलियाँ परस्पर एक-दूसरे के साथ गुम्फित रहा करती हैं । इसकी मुद्रा यशस्विनी मानी जाती हैं ।

पन्द्रहवाँ वर्ण– इसका पन्द्रहवाँ अक्षर 'म' है । इस मंत्र के कुत्स ऋषि, शक्वरी छन्द तथा देवता मरुत् हैं । यह वायुतत्त्व का प्रतीक हैं, इसका रंग अरुणाभ है । इसकी कला मर्यादा तथा विद्युत्वर्णीय शक्ति है । इस मुद्रा के प्रदर्शनार्थ हाथों की उँगलियों के अगले भाग को एक में मिलाकर बाएँ हाथ के ऊपर दाएँ तथा दाएँ हाथ पर बाएँ को रखा जाता है । इस प्रकार यह संमुखोन्मुख मुद्रा बन जाती है । इस मुद्रा का फल सौभाग्यवर्धक तथा समस्त पापनाशक कहा गया है ।

सोलहवाँ वर्ण– इसका सोलहवाँ अक्षर 'हि' है । इस मंत्र के दक्ष प्रजापति ऋषि, पंक्ति छन्द तथा देवता सोम कहे गये हैं । यह नीलवर्ण, कर्णेन्द्रिय से सम्बन्धित है । विशाला इसकी शक्ति तथा स्फुटा ही कला है। इसमें प्रलम्ब मुद्रा प्रदर्शित करने हेतु हाथ की उँगलियों को थोड़ा समेटकर कोशाकृति का रूप देते हुए पलट कर उन्हें नीचे की ओर झुकाना पड़ता है। इस मुद्रा के परिणामस्वरूप अभीप्सित फल की प्राप्ति होती है ।

सत्रहवाँ वर्ण– इसका सत्रहवाँ अक्षर 'धि' है । कश्यप इसके ऋषि, छन्द त्रिष्टुप् तथा देवता अंगिरा कहे गये हैं । यह त्वक् इंद्रिय से सम्बन्धित

रक्त वर्ण वाला है । इसकी शक्ति विभूति तथा बुद्धि ही कला है । इसमें मुष्टिक मुद्रा प्रदर्शित करने के लिए दोनों मुट्ठियों को मिलाकर अँगूठे को ऊपर रखना पड़ता है । यह मुद्रा त्रिलोकमोहिनी तथा चित्तविभ्रमशमनी है ।

अठारहवाँ वर्ण–इसका अष्टादश वर्ण 'यो' है । जमदग्नि इसके ऋषि,छन्द जगती तथा देवता विश्वेदेवा कहे गये हैं । इसका सम्बन्ध नेत्रों से तथा रंग सुनहला है । इसकी शक्ति कमला तथा योगमाता ही कला है। इसके लिए दाएँ करपृष्ठ पर बाएँ हाथ को स्थापित कर दोनों अँगूठों को अधोमुख करने से यह मत्स्य मुद्रा बन जाती है । इस मुद्रा के द्वारा मन का शुद्धिकरण होता है तथा उपासक अन्य लोगों का प्रश्रयदाता भी बन जाता है ।

उन्नीसवाँ वर्ण– इसका उन्नीसवाँ अक्षर 'यो' है । इसके ऋषि अत्रि, छन्द महाजगती तथा देवता अश्विनीकुमार कहे गये हैं । यह रसनेन्द्रिय से सम्बन्धित प्रात:कालीन सूर्य के समान वर्ण वाला है । कला नाम्नी इसकी शक्ति है और योगान्तर नाम की कला है । इसमें कूर्म मुद्रा प्रदर्शित करने के लिए बाएँ हाथ को सीधा रख कर उसकी मध्यमा, अनामा तथा कनिष्ठा को थोड़ा मोड़ ले । तदनन्तर दायीं हथेली को पलट कर इस प्रकार स्थापित करें कि मध्यमा तथा अनामा उँगली बाएँ हाथ की पहले से मोड़ी गयी तीन उँगलियों (मध्यमा, अनामिका तथा कनिष्ठा) के नीचे आ जाय । पुन: बायीं तर्जनी के अगले भाग से दायीं कनिष्ठा और बाएँ अँगूठे से दायीं तर्जनी को संयुक्त कर दें । यह मुद्रा राज्यैश्वर्यदायक है । इसके अतिरिक्त देवप्रतिमा पर अर्पित की गयी वस्तुओं के ग्रहण करने वाले व्यक्ति के दोषों का भी इससे निवारण हो जाता है ।

बीसवाँ वर्ण– इसका बीसवाँ अक्षर 'न:' है । इसके ऋषि विष्णु,छन्द अतिशक्वरी तथा देवता प्रजापति है । इसका वर्ण श्वेत, घ्राणेन्द्रिय से संबद्ध, पापहा शक्ति तथा कला पृथिवी है । इसमें वराह मुद्रा प्रदर्शन के लिए बाएँ हाथ की मुट्ठी बंद कर मध्यमा को विस्तीर्ण कर वाम कुक्षि से लगा लें तो वराह मुद्रा बन जाती है । इसके लिए एक अन्य प्रकार भी बतलाया गया है जिसमें दाएँ हाथ पर बाएँ हाथ को विपरीत दिशा में घुमाया जाता है । इस मुद्रा के द्वारा विष्णु का सान्निध्य प्राप्त होना कहा गया है ।

इक्कीसवाँ वर्ण– इस मंत्र का इक्कीसवाँ अक्षर 'प्र' होता है । इसके ऋषि अंगिरा, छन्द नृमती तथा देवता कुबेर है । यह मनस्तत्त्व से सम्बन्धित

तथा गोरोचन के समान पीतवर्णीय होता है । अचला इसकी शक्ति तथा प्रभाव नाम की कला है । इसमें सिंहाक्रान्त मुद्रा प्रदर्शित करने के लिए दाहिने हाथ की उँगलियों को विस्तृत करके पहले गले के दाहिनी ओर ले जायें, पुन: उन उँगलियों को कान के निकट तक ले आयें । इसी भाँति बाएँ हाथ को गले के बायीं ओर लाकर उसे कान तक ले जायें । इसके द्वारा शिवपद की उपलब्धि होती है ।

बाईसवाँ वर्ण– इस गायत्री मंत्र का बाईसवा वर्ण 'चो' है । इसके ऋषि कुमार, छन्द पृथिवी और देवता शंकर है । इसका वर्ण चन्द्रमा के सदृश उज्ज्वल और तत्त्व अहंकार से जुड़ा हुआ है । इसकी शक्ति परा और ऊष्मा इसकी कला है । सिंहाक्रान्त मुद्रा के समान ही इसमें महाक्रान्त मुद्रा का प्रदर्शन किया जाता है जबकि सिंहाक्रान्त मुद्रा में सभी उँगलियों को सीधा रखते हैं परन्तु इसमें उन्हें थोड़ा संकुचित कर लेना पड़ता है । यह मुद्रा तेजस्विता प्रदान करने तथा ब्रह्मत्व की प्राप्ति कराने वाली होती है ।

तेईसवाँ वर्ण– इसका तेईसवाँ वर्ण 'द' है । इसके ऋषि मृगशृंग, छन्द भुव: तथा देवता ब्रह्मा कहे गये हैं । बुद्धितत्त्व से संयुक्त यह पीत वर्ण है । इसकी शक्ति भृशीला तथा कला दिव्यमान् है । इसमें मुद्गर नाम्नी मुद्रा प्रदर्शन के लिए बायीं तर्जनी को दाहिने हाथ की मुट्ठी में बाँधना पड़ता है। इसमें एक अन्य प्रकार यह भी है कि दायीं मुट्ठी बंद कर दायीं कोहनी बायीं हथेली पर रखी जाती है । यह मुद्रा सायुज्य मुक्ति प्राप्त कराने वाली है ।

चौबीसवाँ वर्ण– गायत्री मंत्र का चौबीसवाँ अक्षर 'यात् ' है । इसके ऋषि भग और देवता विष्णु हैं । मलद्वार से सम्बन्धित यह चित्रवर्णा है । इसकी शक्ति वज्रा और कला निरंजना है । इसमें पल्लव मुद्रा प्रदर्शित करने के लिए दाहिने हाथ की उँगलियों को मुख के समक्ष आईने की तरह करने से यह मुद्रा बन जाती है । इसके अतिरिक्त दाएँ करतल को नीचे की ओर करके मस्तक तक ले जाना भी इसका एक दूसरा प्रकार है । इसके द्वारा देवलोक की प्राप्ति सम्भव होती है ।

उपर्युक्त चौबीस मुद्राओं के पश्चात् जपान्त में साधक को निम्नलिखित आठ मुद्राएँ और भी प्रदर्शित करनी चाहिए जो इस प्रकार से हैं—

१. धेनु, २. ज्ञान, ३. वैराग्य, ४. योनि, ५. शंख, ६. पद्म, ७. लिंग तथा ८. निर्याण ।

१. धेनुमुद्रा–इस मुद्रा में दायीं तर्जनी को बाएँ हाथ की मध्यमा से, बायीं तर्जनी को दाएँ हाथ की मध्यमा से, बाएँ हाथ की अनामिका को दाएँ

हाथ की कनिष्ठा से तथा दाएँ हाथ की अनामिका को बाएँ हाथ की कनिष्ठा उँगली से मिलाना पड़ता है जिससे इसकी आकृति गाय के चार थन के समान बन जाती है ।

२. ज्ञानमुद्रा– दाएँ अँगूठे के साथ तर्जनी को संयुक्त कर गोलाकृति कर लें । तत्पश्चात् शेष उँगलियों को विस्तृत कर हृत्प्रदेश अथवा बगल के भाग में लगाने से ज्ञानमुद्रा कही जाती है ।

३. वैराग्य मुद्रा– इसके लिए दोनों अँगूठों के साथ दोनों तर्जनियो को मिलाकर घुटनों पर स्थापित किया जाता है । शेष उँगलियाँ विस्तीर्ण रहती हैं ।

४. योनिमुद्रा– दोनों कनिष्ठाओं को एक साथ आबद्ध कर लें, फिर बायीं तर्जनी के ऊपर अनामा रखते हुए दायीं तर्जनी से बाएँ हाथ की अनामिका को मिला दें । तदनन्तर दोनों मध्यमाओं को मिलाकर ऊपर की ओर रख लें तो योनिमुद्रा बन जाती है ।

५. शंख मुद्रा– दाएँ हाथ की चारों उँगलियों के साथ बाएँ अँगूठे को बाँध लें । पुनः दाएँ अँगूठे को ऊपर रखकर बाएँ हाथ की चारों उँगलियों का स्पर्श करायें तो शंख मुद्रा बनती है ।

६. पद्ममुद्रा– दोनों हाथों के अँगूठें तथा उँगलियों को परस्पर मिला देने पर पद्ममुद्रा कही जाती है ।

७. लिंग मुद्रा– इसके लिए दाएँ अँगूठे को सीधा रखकर शेष सभी उँगलियों को परस्पर ग्रथित कर लें । तत्पश्चात् बाएँ अँगूठे को दाएँ अँगूठे के मूल भाग पर रखें ।

८. निर्याण मुद्रा– इसमें नीचे झुकाये हुए बाएँ हाथ पर ऊर्ध्वमुखी दायें हाथ की उँगलियों को आपस में गुंफित कर हाथों को पलट दें । यह मुद्रा प्रायः पूजन की समाप्ति पर विसर्जन हेतु प्रदर्शित की जाती है । कुछेक लोग इस निर्याण मुद्रा के स्थान पर निर्वाण मुद्रा प्रदर्शित करते है जिसमें बाएँ हाथ पर दाएँ हाथ को रखकर उँगलियों को गूँथकर सीधा घुमा देते है । इस मुद्रा के फलस्वरूप दोनों तर्जनियाँ ऊपर की ओर रहती हैं जिन्हें मिलाकर कान के निकट तक लाना पड़ता है ।

इस प्रकार गायत्री-पूजन में कुल बत्तीस मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है ।

✻

ध्यान धारणा हेतु पंच-तत्त्व की मुद्राएँ

पहले बतलाया जा चुका है कि हाथों की पाँचों उँगलियाँ ही पंच तत्त्वों की प्रतीक मानी जाती हैं, जैसे— कनिष्ठा पृथ्वीतत्त्व, अनामा जलतत्त्व, मध्यमा अग्नितत्त्व, तर्जनी वायुतत्त्व तथा अँगूठा आकाशतत्त्व का स्वरूप है। यहाँ उन पंचतत्त्वों के वर्ण, आकार तथा बीज आदि के सहित ध्यान करने की विधि दी गयी है जो इस प्रकार से है—

१. पृथिवीमुद्रा– इसका वर्ण पीत, आकार चतुष्कोण तथा 'लं' बीज है। इसमें दीर्घकाल तक कुम्भक प्राणायाम (प्राणायाम की एक विधि जिसमें नासिका के दाएँ छिद्र को अँगूठे से तथा बाएँ छिद्र को अनामा और मध्यमा से दबाकर ऊपर खींचे गये श्वास को रोका जाता है) करने से पृथ्वी मुद्रा कही जाती है। इसके द्वारा ब्रह्मदेव का ध्यान किया जाता है।

२. आम्भसी (जल) मुद्रा– शंख के समान श्वेतवर्णीय, चन्द्रवत् स्वच्छ और 'वं' बीज है। इसमें विष्णुदेव का ध्यान करते हुए कुम्भक प्राणायाम करना चाहिए।

३. वैश्वानरी (तेज) मुद्रा– इसका रंग इन्द्रगोप (वर्षाकाल में पाया जाने वाला एक लाल रंग का कीड़ा) के समान लाल, नाभि-प्रदेश में अवस्थिति, तथा 'रं' बीजाक्षर है। इसमें तेजपुंज रुद्रदेव का ध्यान कुम्भक प्राणायाम के द्वारा किया जाता है।

४. वायुमुद्रा–इसका रंग धूएँ के समान तथा बीज 'यं' है। इसमें सत्त्वगुंण- सम्पन्न वायुदेव का ध्यान कुम्भक प्राणायाम के द्वारा किया जाता है।

५. आकाशमुद्रा– इसका वर्ण सागर-जल के समान तथा 'हं' बीज है। इसमें भगवान शिव का ध्यान कुम्भक प्राणायाम करके करना पड़ता है।

रोगोपचार हेतु कुछ अन्य मुद्राएँ

पृथिवीमुद्रा– अनामिका तथा अँगूठे के अगले पर्व को एक साथ मिला देने से यह मुद्रा बनती है। इसके लिए पद्मासन लगाकर किसी कोलाहल-रहित स्थान में बैठ जायँ और बराबर इसका अभ्यास करते रहें तो स्मरण-शक्ति का विकास होता एवं मानसिक शिथिलता दूर होती है। इसके निरन्तर अभ्यास द्वारा जीवनी-शक्ति भी बढ़ती है।

जलमुद्रा– इस मुद्रा में अँगूठे और कनिष्ठा के अग्रभाग को मिलाकर कुछ क्षण तक अँगूठे से दबाना पड़ता है। अनेक प्रकार के चर्मरोगों

में यह लाभकारी है। इसके द्वारा त्वचा की रूक्षता का निवारण होता है तथा चेहरे पर चमक आती है। भोजनोपरांत हृदय में जलन की अनुभूति होना तथा खट्टी डकार का आना भी इसके प्रयोग से ठीक हो जाते हैं।

वायुमुद्रा– इस मुद्रा में तर्जनी उँगली को अँगूठे के मूलभाग से लगाया जाता है। इसमें अँगूठे के द्वारा तर्जनी को दबा देना चाहिए। इसके प्रयोग से गठिया आदि वातरोग दूर हो जाते हैं। इससे गाँठों में होने वाला शोथ और उसकी वेदना शांत होती है। पक्षाघात (पेरालिसिस, लकवा) आदि भयानक रोगों में भी इससे लाभ होते देखा गया है। इसके द्वारा रक्त का संचार सुचारु रूप से होने लगता है।

तेजसी मुद्रा–इसमें अनामा अँगुली को नीचे की ओर कुछ झुकाकर उसके मध्य पर्व पर अँगूठे से दबाव दें। दमा रोग का वेग बढ़ने पर इस मुद्रा के साथ ही गरम जल के पात्र में दोनों पैरों को डाल दें तो अतिशीघ्र लाभ होता है।

आकाश मुद्रा– मध्यमा उँगली को झुकाकर अँगूठे की जड़ को दबायें और अँगूठे को मध्यमा के बीच वाले भाग पर रखें। इस मुद्रा के निरन्तर अभ्यास करने से वृद्धावस्था में होने वाली बधिरता दूर होती तथा कर्णवेदना में भी शांति मिलती है।

काकचंचु या काकी मुद्रा– इसके लिए होंठों को कौए की चोंच के समान बनाकर बाहर की हवा को जितना अधिक भीतर खींच सकें, उतना अधिक शनैःशनैः खींचें। इस मुद्रा का प्रयोग ज्वरावस्था में शरीर का तापमान अधिक बढ़ जाने पर करें तो ज्वर का वेग तत्क्षण ही घट जाता है। इस मुद्रा का प्रतिदिन प्रातः - सायं पाँच मिनट तक अभ्यास कर लेने से शारीरिक थकावट की अनुभूति नहीं होती। इसके द्वारा फुफ्फुस (फेफड़ा) के सभी रोगों का शमन होता एवं वार्धक्य से छुटकारा मिलता है।

ज्ञान मुद्रा– रोग शमनार्थ सुखासन की अवस्था में बैठकर हाथ की दोनों हथेलियों को दोनों जाँघों पर स्थापित कर दें तो समस्त रोगों का निवारण होता है, परन्तु पूजन-कार्य में तर्जनी के प्रथम पोर का स्पर्श अँगूठे के मूलभाग से कराना होता है।

प्राण मुद्रा– यह मुद्रा कनिष्ठा, अनामा और अँगूठे के अग्रभाग को एक साथ मिलाने से बनती है। बाकी दोनों उँगलियों को सीधा करके रखें। यह मुद्रा स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। प्रतिदिन १०-१५ मिनट

तक इसका बराबर अभ्यास करते रहने से मानसिक थकावट दूर होती है। इस मुद्रा का अभ्यास कोई भी साधक बिना किसी की सहायता लिये स्वयं ही कर सकता है।

चिन्मय मुद्रा– सर्वप्रथम पद्मासन की अवस्था में बैठकर हाथों को विस्तृत कर लें, हथेलियों को सीधा फैलाकर उन्हें जाँघों पर टिका दें। अब तर्जनी के अग्रभाग को अँगूठे के अग्रभाग से स्पर्श करायें जिससे उसकी आकृति गोलाकार दिखाई पड़े। शेष उँगलियों को कुछ ढीली रखकर मोड़ लें अथवा फैला दें। प्रतिदिन १०-१५ मिनट तक इसका अभ्यास करने से स्मरण-शक्ति बढ़ती तथा स्नायविक दुर्बलता दूर होती है। शरीर में स्फूर्ति की अनुभूति होती और शारीरिक-मानसिक अवसाद दूर होते हैं। इसके द्वारा मिरगी, हिस्टीरिया तथा भूतावेश आदि रोगों का भी शमन होता है। इस मुद्रा के द्वारा समाधि अवस्था तक पहुँचने के लिए किसी गुरु का आश्रय लेना अनिवार्य होता है।

हृदय मुद्रा– इस मुद्रा में कनिष्ठा को सीधा रखकर अनामिका, मध्यमा तथा तर्जनी को समेटकर अँगूठे से दबा लें। इस मुद्रा के द्वारा हृदय सम्बन्धी रोगों में अत्यधिक लाभ होता है।

सर्वरोगहारी मुद्रा– इसके लिए कनिष्ठा तथा तर्जनी उँगली को सीधा रखकर मध्यमा तथा अनामिका के द्वारा अँगूठे पर दाब देना पड़ता है। प्रातःकाल प्रतिदिन १५ मिनट तथा इसका अभ्यास करने से रोगनिरोधक-शक्ति बढ़ती है। इसके अतिरिक्त प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम) के रोगियों के लिए यह विशेष लाभदायक सिद्ध होता है।

लिंगमुद्रा– दाहिने अँगूठे को सीधा रखकर शेष उँगलियों को गुंफित कर लें। बाएँ अँगूठे को दाएँ अँगूठे के मूलभाग पर लगायें तो लिंगमुद्रा होती है। ध्यान रहे कि इसमें उँगलियाँ ढीली न होने पायें। इसके द्वारा कफजनित रोगों का विनाश होता है। इसका अभ्यास नित्य ५ से १० मिनट तक करने के फलस्वरूप पार्श्वशूल (प्लुरिसी) तथा फेफड़ों के रोग का निवारण होता है।

नेत्रनिमीलन मुद्रा– इसके लिए प्रातः सूर्योदय के समय सूर्य की ओर मुख करके बैठ जायँ। पुनः दोनों हथेलियों को मिलाकर ऊपर की ओर उठायें जिससे नासिका के ऊर्ध्वभाग से कनिष्ठिकाओं का स्पर्श होता रहे। हथेलियों से आँखें बंद कर लें तथा दाएँ हाथ की उँगलियाँ मस्तक के वाम

भाग का स्पर्श करती रहें। इस प्रकार सूर्यावलोकन करने से नेत्रों पर सूर्य की सुनहली किरणें पड़ती हैं। इस प्रकार के अभ्यास से वृद्धावस्था में भी नेत्रों की ज्योति स्थिर बनी रहती है तथा नेत्रविकार भी दूर हो जाते हैं।

अश्विनी मुद्रा– गुदाद्वार को बारम्बार सिकोड़ने और फैलाने को अश्विनी मुद्रा का नाम दिया गया है। कुछ दिनों तक इसका लगातार अभ्यास करने से बवासीर एवं भगन्दर रोगों में लाभ होता है।

महाबन्ध मुद्रा– इस मुद्रा का अभ्यास करने से असमय में वृद्धता नहीं आती। इससे बल-वीर्य की वृद्धि होती है। जिन लोगों में पौरुषग्रन्थि (प्रोस्टेट ग्लैंड) बढ़ने के फलस्वरूप मूत्रावरोध हो जाता है उनके लिए यह परम लाभदायक है। इसके अतिरिक्त जिन स्त्रियों में मासिकस्राव की गड़बड़ी या श्वेत प्रदर (ल्यूकोरिया) हो उनके लिए भी इस मुद्रा का अभ्यास परमोपयोगी है। इस मुद्रा का प्रयोग नियमित रूप से करते रहने पर समस्त रोगों का निवारण होता है। इसमें बायीं एड़ी को मलद्वार की जड़ से लगाकर बायीं जाँघ पर दायाँ पैर रखना पड़ता है।

विपरीतकरणी मुद्रा– इसके अभ्यास से वलीपलित (असमय में ही बालों की श्वेतता एवं त्वचा पर झुर्री पड़ना) रोग का नाश होता है। इससे नेत्रों की ज्योति तथा श्रवण-शक्ति निरन्तर बनी रहती है। इसके लिए दायीं नासिका के छिद्र से आने वाले श्वास को ऊपर खींचकर पुनः बायीं नासिका के छिद्र से निकलने वाले श्वास को नीचे लाना पड़ता है।

पञ्चबलि मुद्राएँ

१. गणेश– गणेश-पूजन के निमित्त अँगूठे और मध्यमा को मिलाकर बलि-पदार्थ पर 'कारण' (मद्य) अर्पित करें।

२. बटुक-भैरव– अँगूठे और अनामिका के साथ बलि-द्रव्य पर 'कारण' उँडेलना चाहिए।

३. क्षेत्रपाल– अँगूठे तथा तर्जनी की सहायता से बलि-द्रव्य पर 'कारण' चढ़ायें।

४. योगिनी– चौंसठ योगिनियों के लिए तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और अँगूठे के योग से बलिपदार्थ पर 'कारण' गिरावें।

५. सर्वभूत– सर्वभूतों के लिए सभी पाँचों उँगलियों को एक साथ मिलाकर बलि-सामग्री पर 'कारण' चढ़ाना चाहिए।

हवन-विधि एवं मुद्राएं

हवन-काल में आहुति प्रदान करने से पूर्व जिस प्रकार वैदिक मंत्रोच्चार आवश्यक होता है उसी प्रकार मुद्राओं के प्रयोग भी आवश्यक होते हैं । मन्त्रहीन एवं मुद्राविहीन होम का पूर्णरूपेण फल साधक को प्राप्त नहीं होता ।

हवन के लिए अरणि नामक काष्ठ को घर्षित कर उत्पन्न की गयी अग्नि को किसी मिट्टी के पात्र में लेकर उसे दूसरे पात्र से आच्छादित कर दें । पुनः अवगुंठिनी मुद्रा द्वारा अग्नि का आच्छादन कर तीन बार प्रणव (ॐ) शब्द को उच्चरित कर अग्नि-स्थापन करें ।

अवगुंठिनी– बाएँ हाथ की मुट्ठी बंदकर तर्जनी को अलग निकाल लें या दोनों तर्जनियों को आपस में संयुक्त कर अग्नि के निकट घुमाने पर अवगुंठिनी मुद्रा होती है ।

हवन के निमित्त मृगी, हंसी और शूकरी– ये तीन मुद्राएँ प्रमुख मानी जाती हैं ।

मृगी– कनिष्ठा और तर्जनी को मिला देने से मृगी मुद्रा बनती है ।

शूकरी– सभी उँगलियों को एक साथ मिलाकर हवन करने पर शूकरी मुद्रा कही जाती है । आभिचारिक कर्मों में शूकरी तथा शांतिकरण हेतु तर्जनी और अँगूठे को मिलाकर हवनीय द्रव्य से आहुति प्रदान करें ।

दाह, ज्वर, विद्वेषण, उच्चाटन तथा मारण में अनामिका तथा अँगूठे के द्वारा आहुति देनी चाहिए ।

हर प्रकार की विघ्न - बाधाओं के शान्त्यर्थ तर्जनी एवं मध्यमा से तथा भूत-प्रेतादि भय के निवारणार्थ तर्जनी, मध्यमा और अँगूठे की मुद्रा से हवन-कर्म करना उत्तम फलदायी होता है ।

आकर्षण, मोहन, उच्चाटन, क्षोभण आदि कर्मों के लिए कनिष्ठा, मध्यमा तथा अँगूठे की सहायता से बनी मुद्रा के द्वारा अग्नि में आहुति दें।

किसी प्रवासी व्यक्ति को स्वदेश बुलाने के लिए हवन में तर्जनी और अनामिका उँगली के प्रयोग करने चाहिए ।

उक्त प्रकार की मुद्रा से हवन करने पर शारीरिक आरोग्यता, कांति, ओज, पुष्टि तथा उत्साहवर्धन होता है ।

स्विष्टकृत् होममुद्रा– हवन के पश्चात् शेष सामग्री को किसी स्वच्छ पात्र में रखकर उसे दोनों में भरकर अग्नि में डाल दें। इसे आवशिष्टिका मुद्रा भी कहते हैं।

उपर्युक्त रीति से मुद्रा के सहित होम करने पर समस्त कार्यों की सिद्धि निःसन्देह रूप से होती है।

✼

परिशिष्ट

इस परिशिष्ट भाग में देवाराधन के कुछ विशिष्ट नियमों का उल्लेख किया गया है जिसका अनुपालन सभी उपासकों के लिए अनिवार्य माना जाता है ।

समस्त देवों के पूजनार्थ उपयुक्त तिथियाँ

चैत्रेशुक्लचतुर्दश्यां दमनैः पुष्पयेद्धारम् ।
नारायणं तु द्वाद्वश्यामष्टम्यां गिरिनन्दिनीम् ।।१।।
सप्तम्यां भास्करं देवं चतुर्थ्यां गणनायकम् ।
एवं तत्तत्तिथौ तं तं पवित्रैः श्रावणेऽर्चयेत् ।।२।।
माघकृष्णचतुर्दश्यां विशेषाच्छिवपूजनम् ।
आश्विनाद्यनवाहेषु दुर्गापूजा यथाविधि ।।३।।

अर्थात् चैत्रशुक्ल चतुर्दशी तिथि में दमनक (दौना) के पुष्पों से शिव का पूजन एवं द्वादशी तिथि में भगवान विष्णु की पूजा करनी चाहिए । सप्तमी को सूर्यदेव की तथा चतुर्थी में गणनायक गणेश-पूजन करना उचित है । इसी प्रकार श्रावण मास में ऊपर कथित तिथियों में दमनक के फूलों द्वारा पूजन करने का विधान बतलाया गया है । विशेषतया माघ कृष्ण चतुर्दशी में भगवान आशुतोष शंकर की पूजा करनी चाहिए । आश्विन् मास के प्रारम्भिक नव दिनों तक विधिपूर्वक भगवती दुर्गा की पूजा करनी चाहिए ।।१-३।।

गोपालं पूजयेद् विद्वान्नमः कृष्णाष्टमी दिने ।
एवं चैत्रसितेपक्षे नवम्यामर्चयेत् सुधीः ।।४।।
वैशाखाद्यचतुर्दश्यां नरसिंहं प्रपूजयेत् ।
यजेच्छुक्ल चतुर्थ्यां तु गणेशं भाद्रमाघयोः ।।५।।
महालक्ष्मीं यजेद् विद्वान् भाद्रकृष्णाष्टमी दिने ।
माघस्य शुक्ल सप्तम्यां विशेषाद्दिननायकम् ।।६।।

अर्थात् कृष्णाष्टमी के दिन श्रीकृष्ण का तथा चैत्र शुक्ल नवमी तिथि में विद्वान पुरुष को श्रीराम का पूजन करना उचित कहा गया है । वैशाख कृष्ण चतुर्दशी को नृसिंह भगवान की तथा माघ एवं भाद्रपद की शुक्ला चतुर्थी में गणेशजी की पूजा करें । भाद्रकृष्ण अष्टमी को महालक्ष्मी तथा माघ शुक्ला सप्तमी तिथि में सूर्यनारायण की पूजा विद्वानों को करनी चाहिए ।।४-६।।

देवपूजन में ग्राह्य-अग्राह्य पुष्पों के प्रयोग

समस्त प्रकार के पुष्पों में नील कमल का पुष्प सर्वोत्तम माना जाता है, जैसा कि कहा गया है —

'सर्वेषामेव पुष्पाणां प्रवरं नीलमुत्पलम् ।'

कमल की माला द्वारा भगवती दुर्गा का पूजन करने वाला ज्योतिष्टोम यज्ञ का फल पाता और अंत में सूर्यलोकगामी होता है ।

पूजन में बेलपत्र की भी अत्यधिक महत्ता है । यह सूर्य और गणेश के अतिरिक्त सभी देवों के लिए प्रयुक्त होता है, परन्तु इसे नीचे की ओर मुँह करके चढ़ाना चाहिए ।

पत्र, पुष्प एवं फल जिस प्रकार उत्पन्न होते हैं उन्हें उसी रूप में अर्पण करने चाहिए । बासी पुष्प और जल से देवपूजन करना वर्जित है, किन्तु बेलपत्र दश दिनों तक तथा तुलसी ग्यारह दिनों तक बासी नहीं कहे जाते । देवपूजन हेतु बंधूक (गुलदुपहरिया), कुन्द, अतिमुक्त, केतकी, कैथ, मौलसिरी, शिरीष और नीम आदि के पुष्प वर्जित हैं ।

कीड़े-मकोड़ों द्वारा कर्तित, टूटे- फूटे, बासी तथ स्वत: भूमि पर गिरे हुए पुष्पों का भी उपयोग करना निषिद्ध कहा गया है । बाएँ हाथ से चयनित किये गये, किसी देवता पर अर्पित किये गये, कटि-प्रदेश के नीचे वाले वस्त्र में रखे हुए, जल से धुले हुए तथा शूद्रों से खरीदे या लाए गये पुष्पों का भी व्यवहार नहीं करना चाहिए । अँगूठे के द्वारा कभी पुष्पार्पण न करें और न ही मुरझाये हुए पुष्पों को ही चढ़ायें । इस प्रकार के नियम का पालन न करने वाले की पूजा फलहीन हो जाती है ।

पत्र-पुष्प की अनुपलब्धता में केवल तृण, गुल्म एवं औषधियों के द्वारा भी पूजा की जा सकती है । यदि वे भी उपलब्ध न हों तो केवल मन की भक्ति-भावना से ही पूजा सम्पन्न हो जाती है । (भविष्यपुराण)

देवीपूजन में अक्षतों को रोली या रक्तचन्दन से लिप्त कर चढ़ायें । पुष्पों में कनेर और अड़हुल को सर्वोत्तम कहा गया है ।

❋

आयुर्वेद मतानुसार पुष्पों की गुणवत्ता

सभी पत्रों, पुष्पों एवं फलों के अपने अलग-अलग प्रकार के विशेष गुण होते हैं जिनमें से कुछ के वर्णन नीचे दिये जा रहे हैं ।

चमेली– यह स्वाद में तिक्त, व्रण-कुष्ठनाशक, विषघ्न, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा मुख में होने वाले छालों में लाभप्रद है ।

जूही– यह शीतल और स्वादिष्ट होता है । यह मूत्र-शर्करा (प्रमेह), पित्तजनित रोगों, जैसे जलन तथा प्यास की अधिकता आदि में गुणकारी है।

बेला– यह स्वाद में तिक्त, हलका और शीतल गुणों वाला होता है । कर्ण, नेत्र और मुख के रोगों में यह लाभदायक है । इसके द्वारा त्रिदोष (वात, पित्त एवं कफ) का शमन होता है ।

सफेद गुलाब– इसे शतपत्री भी कहा जाता है । यह स्वाद में तिक्त, कसैला और शीतल होता है । यह दाह एवं पित्त का शामक, कुष्ठरोग नाशक तथा चेहरे पर पड़ने वाली छाईं को दूर करता है ।

लाल गुलाब– यह वृश्चिक-विष तथा रक्तदोषनाशक कहा गया है।

मालती– कफ-पित्त एवं कुष्ठनाशक, शरीर के सूजन को दूर करने वाली तथा कर्णरोगों में उपकारी है ।

जपा पुष्प– शीतल होने के कारण दाहशामक, प्रमेह, धातुविकार, प्रदर तथा बवासीर को नष्ट करने वाला है ।

कमल पुष्प– कफ-पित्त नाशक, रक्तविकार तथा विष को दूर करने वाला है ।

जाती पुष्प– यह उष्ण, कड़ुआ, चरपरा, तीक्ष्ण, हलका, वमनकारक, तथा मुखशोधक होता है । इससे कफ-वातजनित रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, दंतरोग, कृमिरोग तथा रक्तविकार दूर होता है । इसकी कलिकाएँ व्रण-विस्फोट तथा कुष्ठरोगों में व्यवहृत की जाती हैं । इसका फूल अत्यन्त मनोहारी सुगन्ध देने वाला होता है ।

देवपूजनार्थ– श्वेत चंदन एवं रक्तचंदन, दोनों का ही प्रयोग किया जाता है जिसमें श्वेत चंदन शीतल एवं वीर्यवर्धक तथा रक्तचंदन रक्तविकार और चर्मरोगों में लाभकारी होता है । इसी प्रकार पूजन में प्रयुक्त होने वाला सिन्दूर उष्ण, कुष्ठ, खाज-खुजली तथा घावों को भरने वाला होता है ।

इसी प्रकार फलों की गुणवत्ता भी देखने में आती है, जैसे—

अनार— यह क्षुधावर्धक, मलरोधक, ज्वरनाशक तथा बलवर्धक होता है ।

नारियल— यह शीतल होने के फलस्वरूप तृषाशामक, पित्तनाशक तथा पुष्टिकर होता है ।

केला— मल को बाँधने वाला, रक्त-पित्तदोषविनाशक तथा शुक्रवर्धक होता है ।

इसी प्रकार पूजन में प्रयुक्त होने वाले पत्रों में भी विशेष प्रकार के गुण पाये जाते हैं, जैसे—

तुलसी-पत्र— यह मूत्रविकार, रक्तविकार, कुष्ठविनाशक तथा प्रतिश्याय (सर्दी-जुकाम) रोग में विशेष रूप से उपयोगी है ।

ताम्बूल-पत्र— इसके सम्बन्ध में कहा गया है—

'ताम्बूलं विशदं रुच्यं कषायं कफपित्तनुत् ।'

अर्थात् यह विशद, रुचिकारक, स्वाद में कसैला तथा कफ-पित्त-जनित रोगों को दूर करने वाला है । यही कारण है कि आज भी वैद्य-परम्परा में तुलसी तथा पान के पत्तों का रस अनुपान के रूप में व्यवहृत किया जाता है ।

पूजनोपयोगी कुछ अन्य नियम

स्नान— किसी भी देवी-देवता के स्नान-जल में निम्नलिखित वस्तुएं डालकर स्नान कराना चाहिए । वे वस्तुएँ हैं—

दमनक या दौना-पत्र, बेलपत्र, कनेर एवं कमल-पुष्प । यदि ये वस्तुएँ अनुपलब्ध हों तो स्नान-पात्र में अक्षत, गंध और फूल डालकर वैदिक मंत्र से स्नान करायें । इसके अतिरिक्त भौमवार, तिथिक्षय, द्वादशी तिथि तथा ग्रहण-काल में देवता को तैल स्नान कराना वर्जित है ।

इसी प्रकार मानवों के लिए भी स्नान की विधि निर्धारित की गयी है । शास्त्रों में कहा गया है —

स्मरेद् गङ्गादिका नद्यो विष्णुर्शिवादि देवताः ।
नाभिमात्रे जले स्थित्वा मन्त्रमेतदुदीरयेत् ।। (आह्निक)

अर्थात् नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर गंगादि नदियों, तीर्थों तथा विष्णु-शिवादि देवताओं का स्मरण करते हुए स्नान करना चाहिए । इसके सम्बन्ध में और भी कहा गया है —

परिधेयाम्बराम्बूनि गङ्गास्त्रोतसि न त्यजेत् ।
न दन्तधावनं कुर्याद् गङ्गागर्भे विचक्षणः ।। (पद्मपुराण)

अर्थात् स्नानोपरांत गंगाजी में न ही गीली धोती निचोड़े और न ही दतुअन करें ।

वस्त्र – अग्राह्य वस्त्र के सम्बन्ध में इस प्रकार का वर्णन पाया जाता है —

न दग्धं न तु विच्छिन्नं पारक्यं न तु धारयेत् ।
काकविष्ठासमायुक्तमाविकं चापि यद्भवेत् ।। (बृहत् पाराशर स्मृति)

अर्थात् जला हुआ, फटा हुआ, किसी अन्य द्वारा प्रयुक्त अथवा ऊनी वस्त्र में यदि काकविष्ठा लग गयी हो तो उसे भी किसी देव या पितृकार्य में कभी व्यवहृत नहीं किया जाना चाहिए ।

आसन– आसन-ग्रहण के नियम शास्त्रों में इस प्रकार से बतलाये गये हैं—

देवपूजनार्थ पुष्प, काष्ठ, वस्त्र, रेशम एवं चर्म– इनमें से किसी एक का आसन अर्पित किया जा सकता है । आसन छिद्रयुक्त, दग्ध, जीर्ण-शीर्ण तथा किसी अन्य व्यक्ति द्वारा व्यवहृत किया हुआ ग्रहण नहीं करना चाहिए । मृगछाला, बाघम्बर, कुश, रूई, बेंत, रेशम या ऊर्णासन (ऊननिर्मित) ही ग्रहण करने चाहिए ।

आसन के फलाफल के सम्बन्ध में कहा गया है कि कृष्णमृगचर्म से ज्ञानवर्धन, व्याघ्रचर्म से मोक्ष-लाभ तथा लक्ष्मी-प्राप्ति, वंशाजिन से रोग-निवारण तथा कम्बलासन से दुःख-दौर्भाग्य का नाश होता है ।

आगे और भी कहा गया है—

वंशासने तु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिसम्भवः ।
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं छिद्रिदारुजे ।
तृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।।

अर्थात् बाँस के आसन पर बैठने से निर्धनता, पत्थर पर रोगोत्पत्ति, भूमि पर दुःख, छिद्रयुक्त काष्ठ पर दौर्भाग्य, घास-फूस पर द्रव्य तथा कीर्तिनाश और पत्तल पर बैठने से मतिभ्रम उत्पन्न होता है । अतः ऐसे आसनों का परित्याग करना चाहिए ।

जप-माला– माला को अनामिका उँगली के अगले पर्व पर रखकर अँगूठे द्वारा दबाते हुए मध्यमा उँगली से घुमाना उचित है । सुमेरु (मध्यमा

अँगुली के मूल तथा बीच के भाग को सुमेरु कहा जाता है) का कभी उल्लंघन नहीं करें। दोबारा जाप करते समय सुमेरु का उल्लंघन न करते हुए अँगूठे को उसके नीचे से ले जायँ। जप-काल में किसी से बोलने पर जप के पुण्य का छठा भाग चला जाता है। अतः मौन रहकर ही जप करना विहित है। यदि भूलवश किसी से बोल दें तो भगवान विष्णु का स्मरण कर पुनः जप प्रारम्भ करना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है—

पुरीषे मैथुने होमे प्रस्रावे दन्तधावने।
स्नानभोजनजाप्येषु सदा मौनं समाचरेत्।। (अत्रिस्मृति)

जपमाला का माहात्म्य इस प्रकार बतलाया गया है —

शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम्।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्ष मुच्यते।।
पद्माक्षैर्दशलक्षन्तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते।
कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत्।।(शि०म०पु०)

अर्थात् शंखमणि की माला से सौ गुना, मूँगा से हजार गुना, स्फटिक (बिल्लौर) मणि से दश हजार, मोती से एक लाख, कमलगट्टे से दश लाख, स्वर्णमाला से एक करोड़ तथा कुशनिर्मित और रुद्राक्ष की माला द्वारा अनन्त गुना फल जापक को मिलता है।

और भी कहा गया है—

वस्त्रेणाच्छादयेद्धस्तं दक्षिणं यः सदा जपेत्।
तस्य स्यात्सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम्।
अतएव अपार्थं सा गोमुखी ध्रियते जनैः।

अर्थात् दाहिने हाथ को सदैव कपड़े से आच्छादित करके जाप करना आवश्यक होता है। अन्यथा जप का फल निष्प्रभावी हो जाता है। अतएव गोमुखी में हाथ डालकर ही जप करना उचित है।

आगे कहा गया है —

प्रातर्नाभौ करं कृत्वा मध्याह्ने हृदि संस्थितम्।
सायं जपति नासाग्रे जपस्तु त्रिविधः स्मृतः।।

प्रातःकाल जप करते समय हाथ को नाभि-प्रदेश, मध्याह्न-काल में हृत्प्रदेश तथा सायंकाल में नासिका के निकट रखकर ही जप करने चाहिए।

जपकाल में यदि गोमुखी का अभाव हो तो दाहिने हाथ को किसी वस्त्र से ही ढँक लेना चाहिए। जप की समाप्ति पर आसन के नीचे जल

गिराकर उस जल से मस्तक का स्पर्श करें। ऐसा न करने पर जप के फल को इन्द्रदेव ग्रहण कर लेते हैं।

जापक के लिए निम्न प्रकार की सावधानी रखना आवश्यक बतलाया गया है, जैसे—

नान्यं मन्त्रं जपेन्मन्त्री कम्पयेन्नविधूनयेत्।
कम्पनात् सिद्धिहानिः स्याद् धूननं बहुदुःखदम्।।
शब्दे जाते भवेद्रोगः करभ्रष्टो विनाशकृत्।
छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरो भवेत्।।

अर्थात् जपकाल में किसी दूसरे मंत्र का जाप करना अनुचित है। जाप करते समय कम्पायमान होने से सिद्धि की हानि, ऊँघने से कठिनतम दुःख, वार्तालाप से व्याधि, माला गिरने से विनाश तथा माला का सूत्र टूटकर गिरने के फलस्वरूप मृत्यु होती है। अतः उक्त प्रकार की सावधानी रखते हुए ही जपकर्म करने चाहिए।

जप का माहात्म्य इस प्रकार बतलाया गया है—

गृहे चैकगुणः प्रोक्तो गोष्ठे शतगुणः स्मृतः।
पुण्यारण्ये तथा तीर्थे सहस्रगुणमुच्यते।।
अयुतं पर्वते पुण्यं नद्यां लक्षगुणो जपः।
कोटिर्देवालये प्राप्ते अनन्तं शिवसन्निधौ।।

अर्थात् गृह में जप करने से एक गुना, गोशाला में सौ गुना, किसी पवित्र वन, बाग या तीर्थस्थान में हजार गुना, नदी के तट पर लाख गुना, मंदिर में करोड़ गुना तथा शिवजी के निकट जप करने का फल अनन्त गुना होता है। इसके अतिरिक्त जप करने के और भी फल कहे गये हैं, जैसे—

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः।
उपांशु स्याच्छतगुणः साहस्रो मानसः स्मृतः।।

अर्थात् विधियज्ञ (अमावास्या तथा पूर्णिमा आदि तिथियों में किये गये धार्मिक अनुष्ठान) से जप करने पर दश गुना, जिस जापमंत्र को कोई अन्य व्यक्ति सुन न सके तो उससे सौ गुना तथा बिना होंठों को हिलाये मन में किये गये जप से मानव को सहस्र गुना अधिक फल मिलता है।

गायत्री मंत्रजाप की महिमा इस प्रकार बतलायी गयी है —

सकृज्जपश्च गायत्र्या पापं दिनभवं हरेत्।
दशवारं जपेनैव नश्येत् पापं दिवानिशम्।

शतवारं जपश्चैव पापं मासार्जितं हरेत् ।
सहस्रधा जपश्चैव कल्मषं वत्सरार्जितम् ।
लक्षो जन्मकृतं पापं दशलक्षोऽन्य जन्मजम् ।
सर्वजन्मकृतं पापं शतलक्षाद् विनश्यति ।।

अर्थात् गायत्री के केवल एक मंत्र का जप कर लेने से दिनभर का, दशवार के जप से रात-दिन का, एक सौ मंत्र से एक महीने का, एक सहस्र से एक वर्ष का, एक लाख से जन्म-भर का, दश लाख से पूर्वजन्म का तथा एक करोड़ जप कर लेने पर जन्म-जन्मान्तर का पातक विनष्ट हो जाता है।

आरती विधान एवं माहात्म्य– देवता की आरती चार बार पहले चरणों की, दो बार नाभिस्थल की, तीन बार अथवा एक बार मुखारविन्द की तथा सात बार सम्पूर्ण अँगों की उतारनी चाहिए । इसके सम्बन्ध में कहा गया है —

आयुः श्रीवर्धनं पुंसां चक्षुषामपि पूरकम् ।
उप-पापहरं चैव सदा नीराजनं हरेः ।।

अर्थात् देवप्रतिमा की आरती करने के फलस्वरूप आयुष्य तथा लक्ष्मी की वृद्धि होती है एवं दृष्टि-शक्ति का संवर्धन होता है । आरती करने के पश्चात् दोनों हाथों से आरती लेकर नेत्रों में लगाना चाहिए ।

इसी प्रकार शंखजल की भी महिमा कही गयी है—

शङ्खमध्ये स्थितं तोयं भ्रामितं केशवोपरि ।
अङ्गलग्नं मनुष्याणां ब्रह्महत्यादिकं हरेत् ।।

अर्थात् देवता के सम्मुख शंख में जल भरकर उसे घुमाकर छिड़के हुए जल को अवश्य ही लेना चाहिए । शरीर पर शंखजल के छींटे पड़ने पर ब्रह्महत्यादिक पापों का नाश हो जाता है ।

दश महाविद्या के जापमन्त्र

दश महाविद्याओं का वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है –

काली तारा महाविद्या षोडशी भुवनेश्वरी ।
भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूमावती तथा ।।
बगला सिद्धविद्या च मातङ्गी कमलात्मिका ।
एता दशमहाविद्या सिद्धविद्याः प्रकीर्तिताः ।। (चामुण्डा तन्त्र)

क्रमानुसार इनके मन्त्र इस प्रकार हैं—

१. काली– 'ॐ क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं दक्षिणे कालिके क्रीं क्रीं क्रीं ह्रीं ह्रीं हूं हूं स्वाहा।' यह बाईस अक्षरात्मक मन्त्र है ।

२. तारा– 'ॐ ह्रीं त्रीं हुं फट् ' यह मंत्र पंचराक्षर है । इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं षडक्षर मंत्र भी पाया जाता है जो इस प्रकार है—

'ऐं ॐ ह्रीं क्रीं हूँ फट्'

३. षोडशी (त्रिपुरसुन्दरी)– इसका मंत्र सोलह अक्षरों वाला इस प्रकार कहा गया है —

'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं सौ: ॐ ह्रीं श्रीं कएइलह्रीं हसकहलह्रीं सकलह्रीं सौं ऐं क्लीं ह्रीं श्रीं ।'

४. भुवनेश्वरी– इसका मंत्र 'ह्रीं' एकाक्षरात्मक है । कुछ ग्रन्थों में तीन अक्षरों का मंत्र भी पाया जाता है, जैसे– 'ऐं ह्रीं श्रीं'

५. त्रिपुरभैरवी– इसका मंत्र इस प्रकार है– 'हसैं हसकरीं हसैं'

६. छिन्नमस्ता– 'ॐ श्रीं ह्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वज्रवैरोचनीये ह्रीं ह्रीं फट् स्वाहा' यह सत्रह अक्षरों का मन्त्र है ।

७. धूमावती– 'धूं धूं धूमावती स्वाहा' । यह आठ अक्षरों का मन्त्र है । कहीं-कहीं इसके अतिरिक्त इसका अन्य रूप भी देखने में आता है जो इस प्रकार है —

'धूं धूं धूमावति ठ: ठ: ।'

८. बगलामुखी– इसका षट्त्रिंशात्मक मंत्र इस प्रकार है —

'ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय बुद्धि विनाशय ह्रीं ॐ स्वाहा ।'

९. मातङ्गी – इसका बत्तीस अक्षरों वाला मंत्र इस प्रकार से है—

'ॐ ह्रीं ऐं श्रीं नमो भगवति उच्छिष्टचाण्डालि श्रीमातङ्गेश्वरि सर्वजनवशंकरि स्वाहा' ।

१०. कमलात्मिका (लक्ष्मी)– इसका एकाक्षर मन्त्र 'श्रीं' हैं । किन्हीं-किन्हीं स्थानों में दशाक्षर– 'ॐ नम: कमलवासिन्यै स्वाहा' और कहीं-कहीं सत्ताइस अक्षरात्मक मन्त्र भी पाया जाता है जो इस प्रकार है—

'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं कमले कमलालये प्रसीद प्रसीद श्रीं ह्रीं श्रीं महालक्ष्म्यै नम: ।' (शारदातिलक एवं मंत्र महार्णव)

मंत्रसिद्धि के निमित्त साधक जितनी जपसंख्या का संकल्प करे, उसके दशांश भाग में उसे हवन, तर्पण, मार्जन एवं ब्राह्मण-भोजन कराना आवश्यक होता है ।

✸

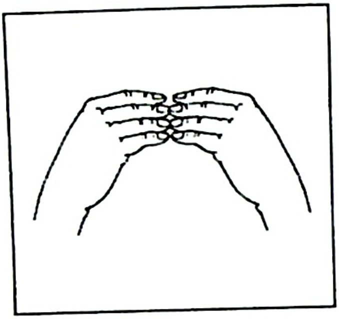

1.सुमुखम् मुद्रा

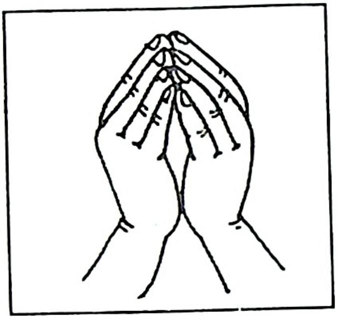

2.सम्पुट मुद्रा

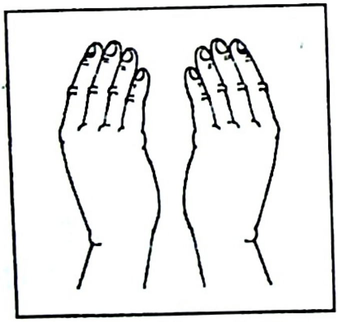

3.विततम् मुद्रा

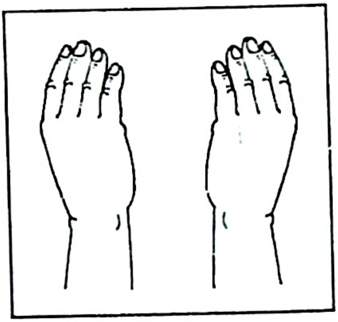

4.विस्तृतम् मुद्रा

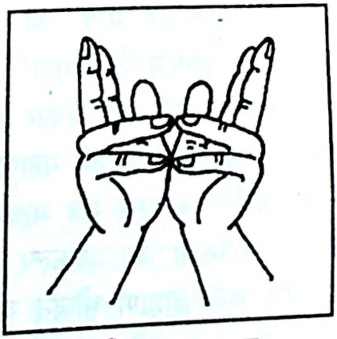

5.द्विमुखम् मुद्रा

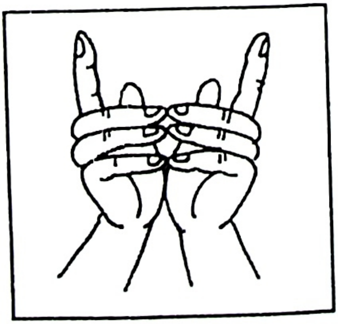

6.त्रिमुखम् मुद्रा

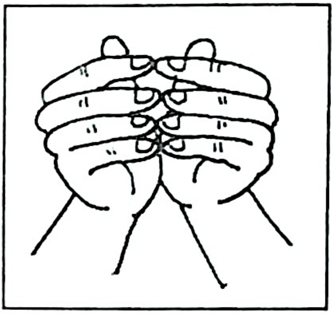

7.चतुर्मुखम् मुद्रा

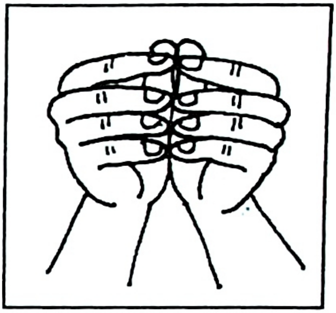

8.पंचमुखम् मुद्रा

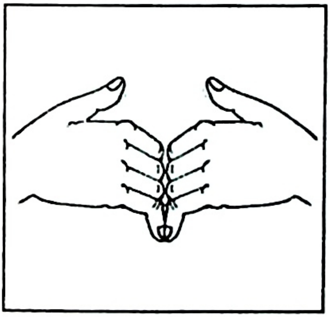

9.अधोमुखम् मुद्रा

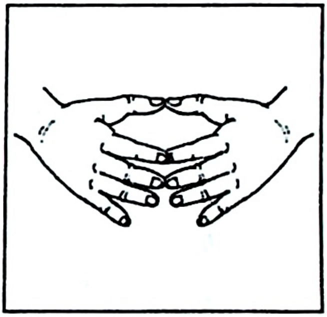

10.षण्मुखम् मुद्रा

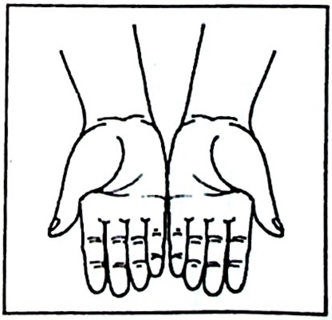

11.व्यापकाञ्जलिकम् मुद्रा

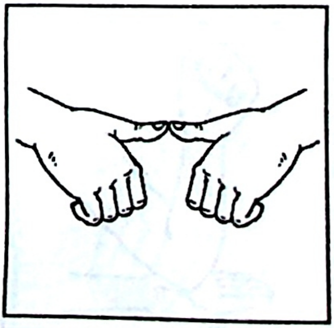

12.शकटम् मुद्रा

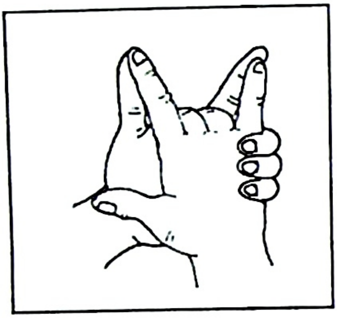

13.कूर्म (कच्छप) मुद्रा

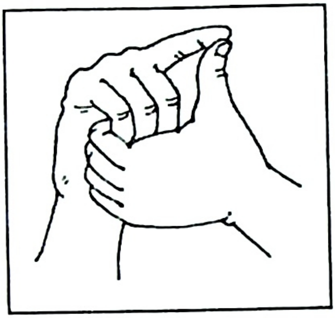

14.वराहकम् मुद्रा

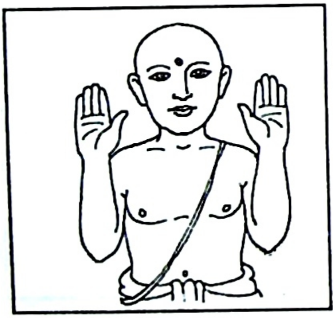

15.सिंहाक्रान्तम् मुद्रा

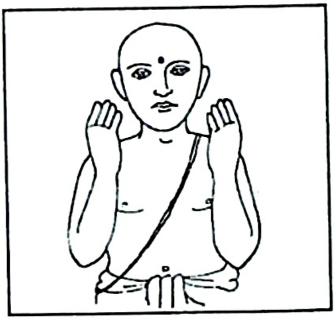

16.महाक्रान्तम् मुद्रा

17.मुद्गर मुद्रा

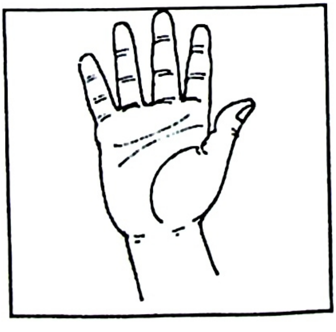

18.पल्लवम् मुद्रा

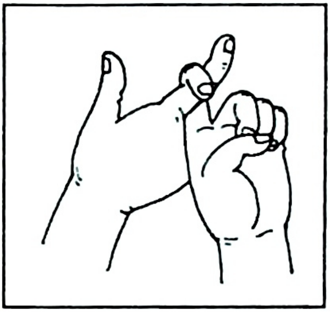

19.यमपाशम् मुद्रा

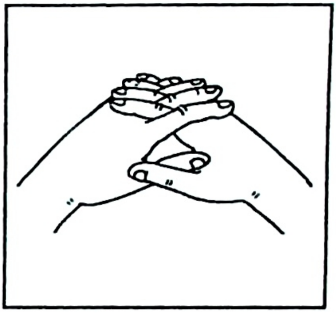

20.ग्रथित मुद्रा

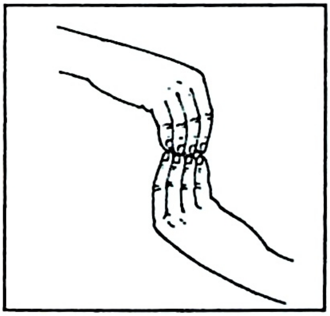

21.सम्मुखोन्मुखम् मुद्रा

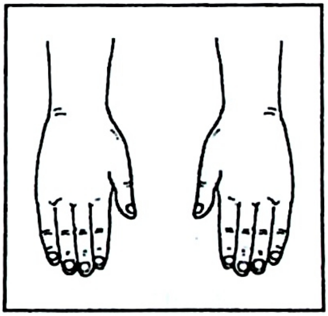

22.प्रलम्ब मुद्रा

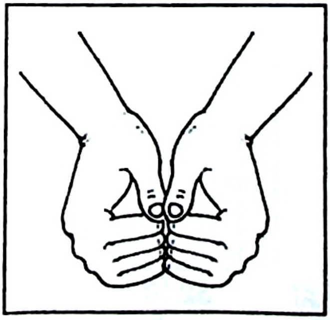

23.मुष्टिकम् मुद्रा

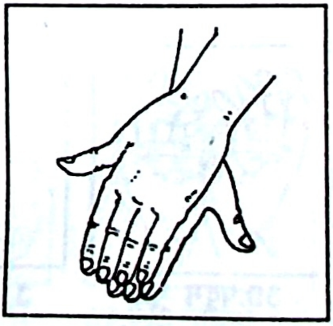

24.मत्स्यः मुद्रा

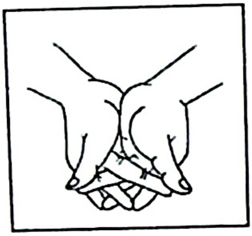

25.सुरभिः मुद्रा

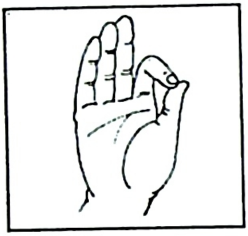

26.ज्ञान मुद्रा

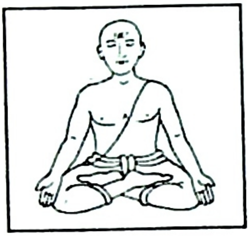

27.वैराग्य मुद्रा

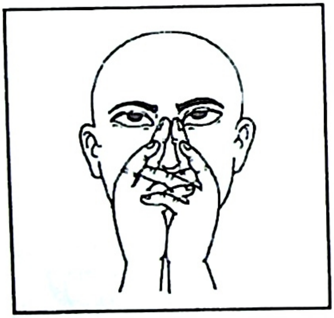

28.योनि मुद्रा

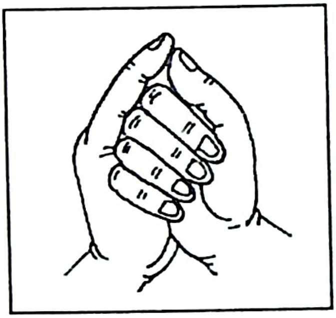

29.शंख मुद्रा

30.पद्म मुद्रा

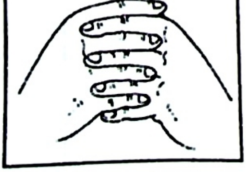

31.लिङ्गम् मुद्रा

32.निर्वाणम् मुद्रा,
निर्याणम् मुद्रा

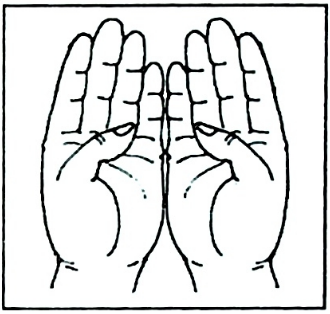

33.आवाहनी मुद्रा

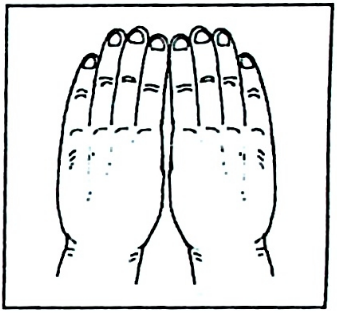

34.संस्थापनी मुद्रा

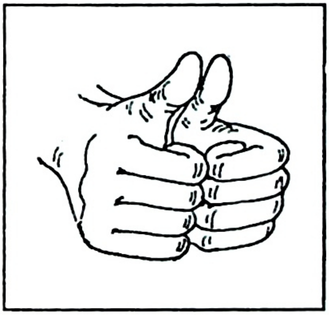

35.सन्निधापनी मुद्रा

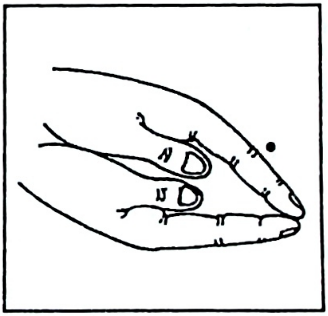

36.अवगुण्ठनी मुद्रा

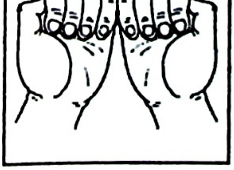

37.सम्मुखीकरणी मुद्रा (1)

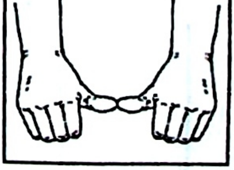

38.संमुखीकरणी मुद्रा (2)

39.सन्निरोधिनी मुद्रा

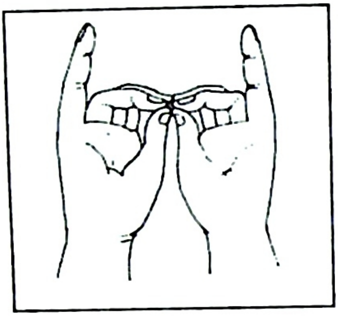

40.सर्वसंक्षोभिणी मुद्रा

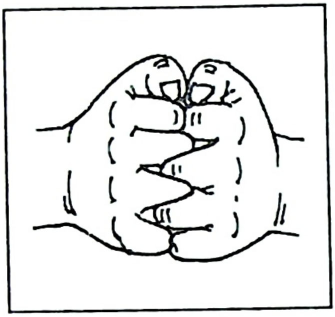

41.सर्व-वशङ्करी मुद्रा

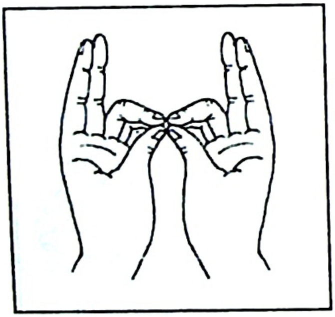

42.सर्वविद्राविणी मुद्रा

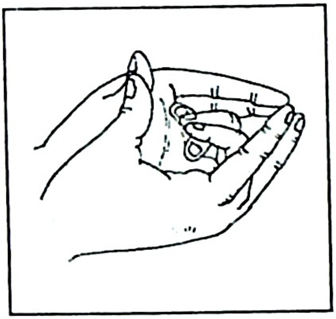

43.सर्वोन्मादिनी मुद्रा

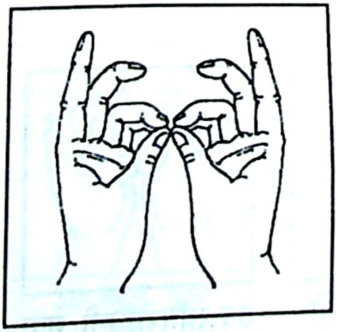

44.सर्वाकर्षिणी मुद्रा

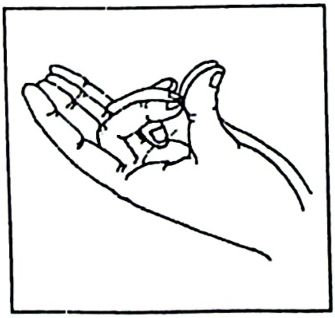

45.सर्वमहांकुशा मुद्रा

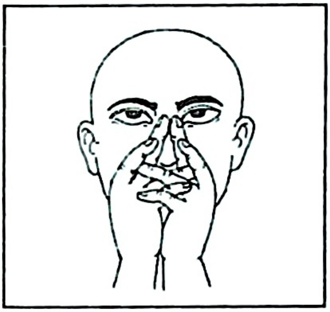

46.योनि मुद्रा

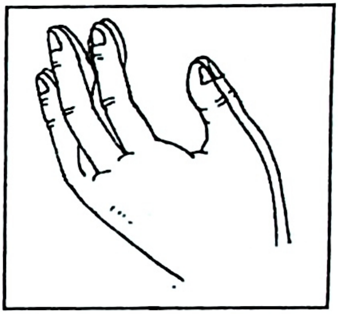

47.त्रिखण्डा मुद्रा

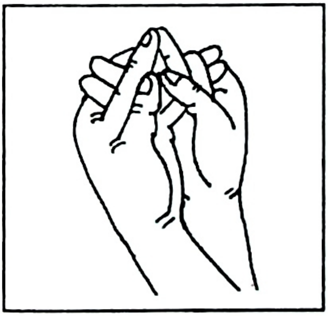

48.खेचरी मुद्रा (1)

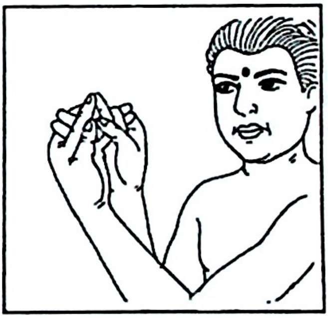

49.खेचरी मुद्रा (2)

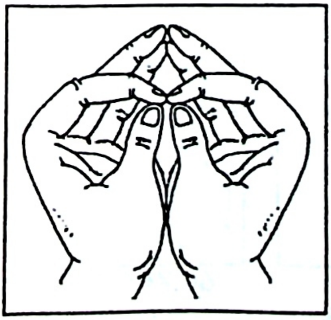

50. बीज मुद्रा

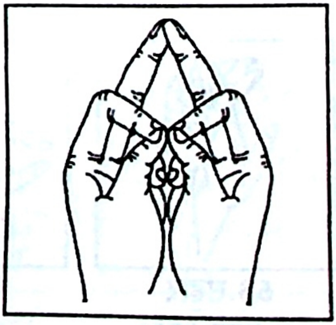

51.सर्वबीज मुद्रा

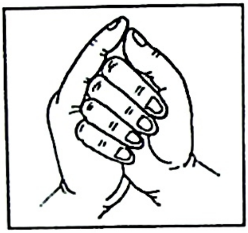
52.शङ्ख मुद्रा

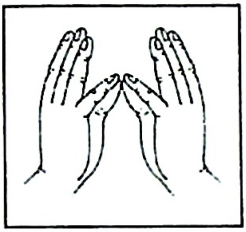
53.चक्र मुद्रा

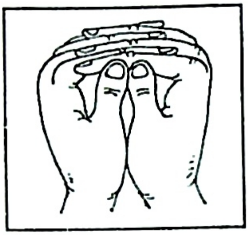
54.गदा मुद्रा

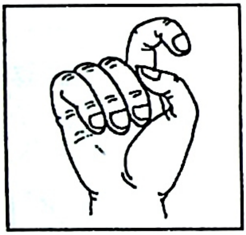
55.अंकुश मुद्रा(1)

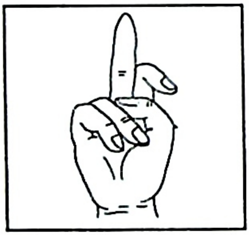
56.अंकुश मुद्रा(2)

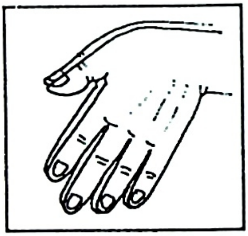
57.परशु मुद्रा

58.संहार मुद्रा (1)

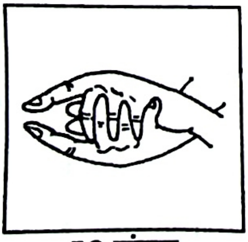
59.संहार मुद्रा (2)

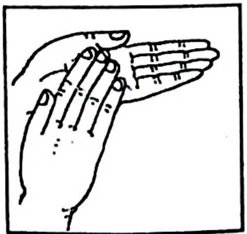
60.हयग्रीव मुद्रा

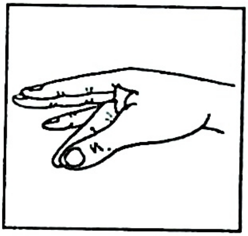

61.लेलिहाना मुद्रा

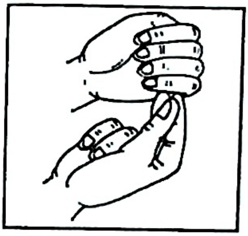

62.मुण्ड मुद्रा

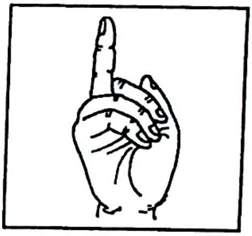

63.दन्त मुद्रा

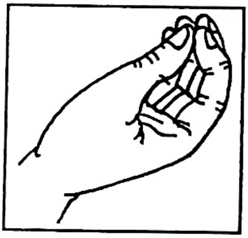

64.ग्रास मुद्रा

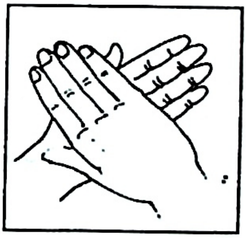

65.चतुरस्त्र मुद्रा

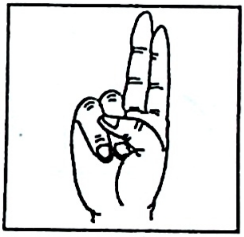

66.खड्ग मुद्रा

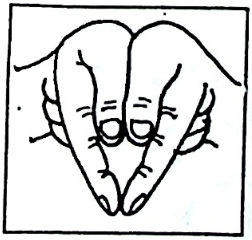

67. पाश मुद्रा

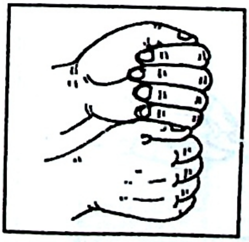

68.मुशल मुद्रा

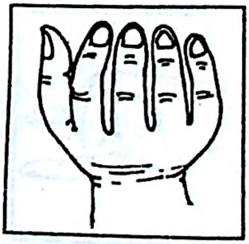

69.मोदक मुद्रा,
लड्डुक मुद्रा

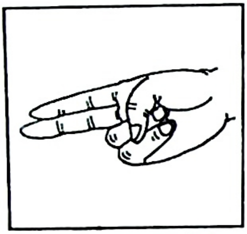

70.प्राण मुद्रा(1)

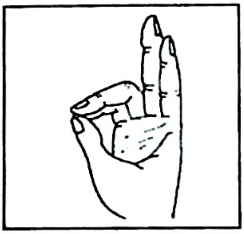

71.प्राण मुद्रा(2)

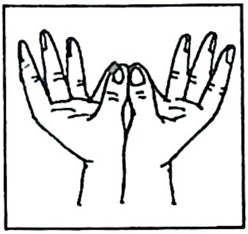

72.ज्वालिनी मुद्रा

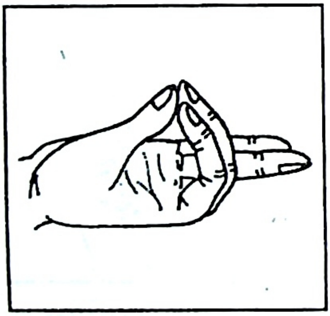

73.अपान मुद्रा

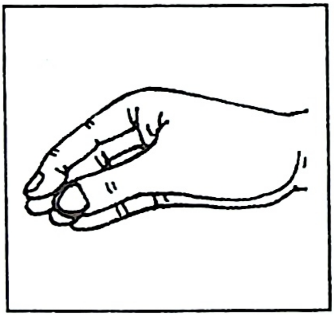

74.समान मुद्रा

75.व्यान मुद्रा

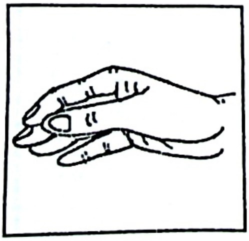

76.उदान मुद्रा

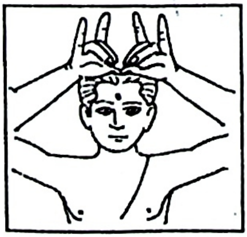

77.मृग मुद्रा

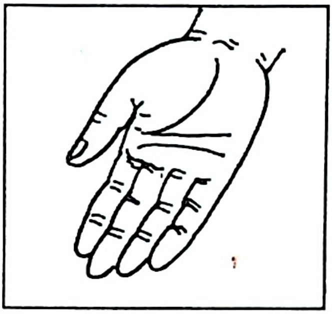

78.वर मुद्रा

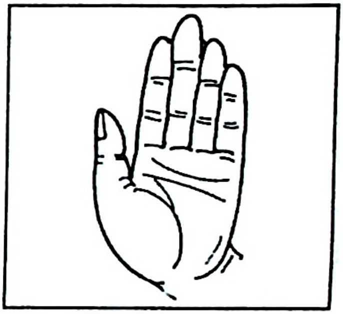

79.अभय मुद्रा

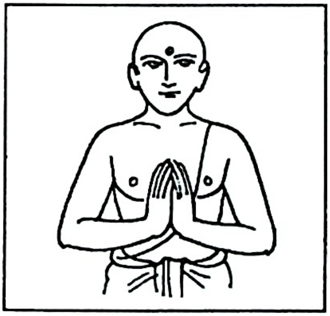

80.प्रार्थना मुद्रा

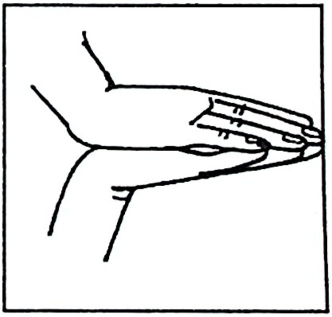

81.वन्दन मुद्रा

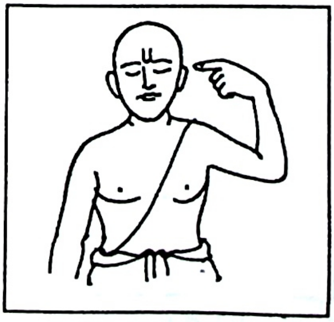

82.सौभाग्यदण्डिनी मुद्रा

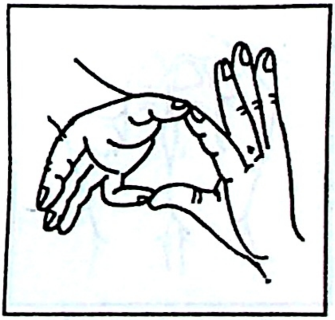

83.गालिनी मुद्रा

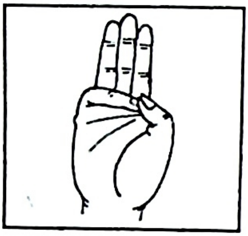

84.वरुण मुद्रा

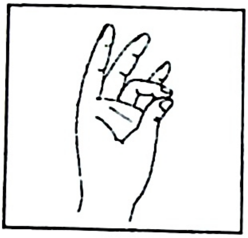

85.पृथ्वी मुद्रा

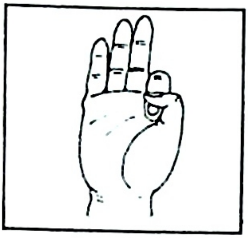

86.वायु मुद्रा

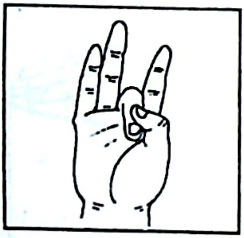

87.आकाश मुद्रा

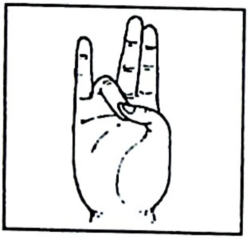

88.सूर्य मुद्रा

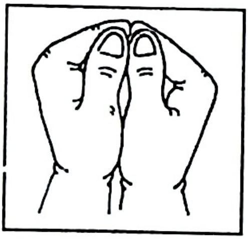

89.कुम्भ मुद्रा (1)

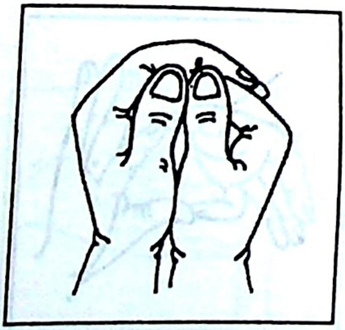

90.कुम्भ मुद्रा (2)

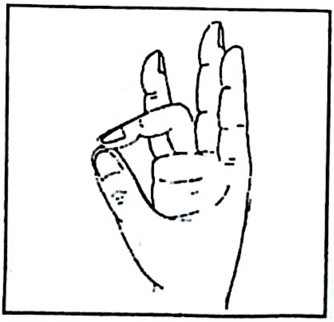

91.तत्व मुद्रा

प्रमुख प्रकाशन

दशमहाविद्याः (श्रीविद्यान्तर्गताः)। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्यासहिताः) 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिकाः। लेखकः सम्पादकश्च—गोस्वामी प्रह्लाद गिरि 'वेदान्तकेशरी'

1. **श्यामाकाली महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
2. **तारा महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
3. **षोडशी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
4. **भुवनेश्वरी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
5. **भैरवी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
6. **छिन्नमस्ता महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
7. **धूमावती महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
8. **बगलामुखी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
9. **मातङ्गिनी महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00
10. **कमला महाविद्या।** श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — 225.00

गायत्री ब्रह्मविद्या। श्रीविद्यान्तर्गता। सविमर्श-'प्रह्लाद'-हिन्दी-व्याख्या-सहिता। 'ज्ञान'-'सपर्या'-खण्डात्मिका। — शीघ्र

दत्तात्रेयतन्त्रम्। 'शिवदत्ती' हिन्दी टीका सहित। व्या. आचार्य पण्डित शिवदत्त मिश्र शास्त्री — 20.00

(बृहत्) दुर्गार्चन पद्धति। (दुर्गापूजन की समस्त विधियों सहित) 'हरि' हिन्दी व्याख्योपेतम्। सम्पा. एवं व्या.—पं. हरिहर प्रसाद त्रिपाठी — 150.00

दुर्गापञ्चाङ्गम्। सम्पादक–मातृप्रसाद पाण्डेय — 10.00

दुर्गासप्तशती। (सचित्र) 'सर्वमङ्गला' हिन्दी व्याख्या, पूजाविधान सहित। व्याख्याकार— पण्डित श्री हरेकांत मिश्र। सप्तशत्यङ्गषट्क पूजाविधि, मन्त्रकोश, नवचण्डी, शतचण्डी, सहस्रचण्डी विधानादि सहित। सोधपूर्ण नवीन संस्करण — 65.00

दुर्गासप्तशती। सप्तशतीयानुष्ठानपद्धति-नवचण्डी-शतचण्डी-सहस्रचण्डी-पल्लवयोजनाविधि-स्तोत्रादि सहित। सम्पादक—गोस्वामी प्रह्लादगिरि वेदांतकेशरी — 25.00

Also can be had from : **Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.**

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9838814784